भूदेव मुखोपाध्याय

'हिंदी' का इतिहास : हाशिये का एक स्वर

ऐश्वर्ज कुमार
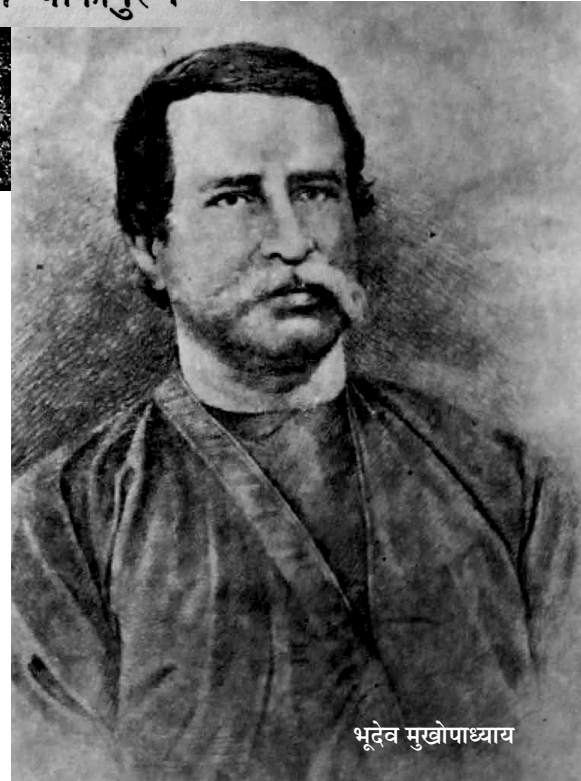
यह लेख आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में 1850 और 1900 के बीच बिहार प्रदेश के भीतर 'हिंदी'* के इतिहास की पड़ताल का प्रयास है। अब तक हिंदी के अधिकतर अध्ययनों को पश्चिमोत्तर प्रांत तक सीमित रखने की कोशिशें हुई हैं और इस विमर्श के केंद्र में 'हिंदी'-उर्दू संघर्ष और उससे संबंधित चिंताएँ रही हैं। बिहार को इन अध्ययनों का हिस्सा नहीं बनाया गया है। लेकिन, यह आलेख बिहार में 'हिंदी' के इतिहास को समझने की कोशिश करते हुए यह भी जानने का प्रयास करता है कि यह इतिहास उत्तर भारत के अन्य भागों से कैसे अलग था। यह अध्ययन दर्शाता है कि कम से कम बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक बिहार की क्षेत्रीय भाषाएँ किस प्रकार मानकीकृत 'हिंदी' की तुलना में 'हिंदी' के विकास के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण थीं। इसमें एक ओर बिहार की प्रांतीय भाषाओं (मैथिली, मगही और भोजपुरी) के समर्थकों और प्रभुत्वशाली हिंदी के विकास की चर्चा की गयी है, वहीं दूसरी ओर औपनिवेशिक राजनीति की मुख्यधारा के भीतर भाषा के प्रश्न की नियति तय करने वाले निर्णयों को समझने की कोशिश है। इसके केंद्र में सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन की शख़्सियत है जो उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक बिहार समेत उत्तर भारत के विभिन्न इलाक़ों में कार्यरत थे। उन्होंने स्वतंत्र 'बिहारी' भाषा का सिद्धांत दिया और उसके प्रति समर्थन जुटाने के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्र की। यह सामग्री उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक सरकार, बंगाल और बिहार के बुद्धिजीवियों द्वारा मानकीकृत 'हिंदी' के समर्थन के विपरीत बिहारी सांस्कृतिक परम्पराओं की सतत लोकप्रियता का प्रदर्शन करती है। भारत के भाषाई इतिहास का यह एक दुखद प्रकरण है कि बिहार की अपनी भाषा को स्वर देने वाले एक अधिकारी के भगीरथ उद्यम को इसके हाशिये पर समेट कर मौन कर दिया गया।

* मैंने 'हिंदी' के साथ इकहरे इनवर्टेड कोष्ठक का प्रयोग इसलिए किया है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक उत्तर भारत में यह भाषा निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रही थी. बिना कॉमा के हिंदी शब्द से मेरा तात्पर्य उस भाषा से है जिसे स्वतंत्र भारत में आधुनिक और मानक भारतीय भाषा के रूप में अधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया.

हाल ही में बिहार प्रदेश के भीतर परिवर्तन एवं विकास की कई नयी सम्भावनाएँ पैदा हुई हैं। इनसे बिहार की संस्कृति एवं भाषा संबंधी लेखनों, भाषणों और बहसों को नयी दिशा मिली है। 2011 के जयपुर साहित्योत्सव में भी इस बदलाव की आहट सुनाई दी। वहाँ एक पूरा सत्र बिहार प्रदेश की एक अहम भाषा भोजपुरी के सिनेमा पर चर्चा के लिए था जिसके तहत बिहारी साहित्य-जगत की विशिष्टता और उसके आरम्भ के विविध पहलुओं को चिह्नित करने का प्रयास किया गया। किंतु इस सराहनीय प्रयास के बावजूद चर्चा में शामिल विद्वान ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में उपयोगी पहलुओं को जोड़ने में विफल रहे। चर्चा को लाभकारी दिशा देने के लिए जिस ऐतिहासिक प्रसंग की जानकारी होनी चाहिए थी, वह उनके पास थी ही नहीं। इसके लिए औपनिवेशिक काल, विशेषकर उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी की शुरुआत में बिहार की भाषाओं एवं साहित्य से जुड़े प्रश्नों, नीतियों एवं चर्चाओं पर ध्यान देना ज़रूरी है।

बिहार क्यों ?

हिंदी के आपैनिवेशिक इतिहास को समझने के लिए बिहार की प्रांतीय भाषाओं— मैथिली, मगही और भोजपुरी का संदर्भ आवश्यक है। परंतु, हिंदी भाषी क्षेत्र का एक प्रमुख भाग होने के बावजूद बिहार की इस भूमिका पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। इसकी एक वज़ह यह हो सकती है कि बंगाल प्रेज़ीडेंसी के भाषाई इतिहास में उसे खालिस उत्तर भारत या हिंदी-पट्टी के अध्ययन-क्षेत्र का अंग मान लिया गया। एक तरह से यह सच भी है कि हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहासकारों और बहुत से अन्य विद्वानों ने बिहार का उल्लेख इसी संदर्भ में ज़्यादा किया है। और, इसका परिणाम यह हुआ है कि गहरी पड़ताल का विषय बनने के बजाय वह एक रस्मी भंगिमा बन कर रह गया है। अत: इस लेख का उद्देश्य दोतरफ़ा है : एक ओर वह मैथिली, मगही और भोजपुरी के समर्थकों तथा हिंदी की प्रभुत्वशाली धारा के अंतर्संबंधों की शिनाख़्त करता है, तो दूसरी तरफ़ इस प्रक्रिया में भाषा की औपनिवेशिक राजनीति को समझने का प्रयत्न करता है।[1] इस प्रक्रिया का प्रधान केंद्र प्रसिद्ध

[1] ए. एफ. होर्नेल (1841-1918) और जी.ए. ग्रियर्सन जैसे विद्वानों द्वारा पूर्वी गौड़ीय अथवा पूर्वी नव-आर्य भाषाओं के रूप में विवेचित की गयी मैथिली, मगही और भोजपुरी जैसी भाषाओं को आज भाषाई विद्वानों के अलावा बहुत से लोग हिंदी की बोलियाँ न मान कर, स्वतंत्र भाषाएँ मानते हैं. देखें, जॉर्ज कारडोना एवं धनेश जैन (2003) : 477-478, 498-499, 516. उन्नीसवीं सदी में जी.ए. ग्रियर्सन ने भी स्पष्ट रूप से कहा था कि बिहार की तीनों भाषाएँ हिंदी से अलग हैं. लेकिन उन्होंने 'बिहारी भाषा' अथवा 'बिहारी बोली' के प्रयोग के साथ भोजपुरी, मैथिली और मगही को

ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारी सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन की शख़्सियत है जो उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक बिहार समेत उत्तर भारत के विभिन्न इलाक़ों में कार्यरत रहे थे।

आज जो प्रांत बिहार के नाम से जाना जाता है, वह हमेशा एक स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में मौजूद नहीं था।[2] 1865 में दीवानी आदेश प्राप्त करके अंग्रेज़ों ने बंगाल, बिहार और ओडीशा के विशाल प्रांतों पर अपना नियत्रंण स्थापित किया।[3] ब्रिटिश प्रशासन के अंतर्गत बिहार समेत बंगाल और ओडीशा के संयुक्त प्रशासन के आधार पर बंगाल प्रेसीडेंसी का गठन हुआ।[4] बिहार 1912 में बंगाल से अलग हुआ, जबकि ओडीशा 1937 तक बंगाल की प्रशासनिक इकाई बना रहा।

यह एक आम धारणा है कि बिहार की भाषाएँ उत्तर भारत की भाषाओं अथवा तथाकथित हिंदी प्रदेश का अंग हैं। इसी धारणा के तहत इन भाषाओं को बंगाल केंद्रित अध्ययनों से जोड़ने का प्रयास नहीं किया जाता। हिंदी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने भी बिहार को इसी तरह देखने का प्रयास किया है।[5] बिहार को जब किसी अध्ययन में सम्मिलित किया भी गया तो महज़ ज़िक्र-भर करके छोड़ दिया गया, और बारीक़ अध्ययन के प्रयास नहीं किये गये।[6] उत्तर भारतीय क्षेत्रों के भाषाई सरोकारों पर, विशेषकर पश्चिमोत्तर प्रांत के भीतर, हिंदी से संबंधित प्रश्नों पर विस्तृत ध्यान खींचने की कोशिशें तो हुईं, लेकिन बिहार के प्रति यह आकर्षण नहीं दिखाई दिया।[7] इस विमुखता का प्रमुख कारण है इन अध्ययनों का हिंदी भाषा के मानक इतिहास पर केंद्रित रहने के साथ उन पर

---

(1) कभी भाषा और (2) कभी एक पृथक भाषा का निर्माण करने वाले बोलियों के समूह का अंग बताया. अपने उसी लेख में जी.ए. ग्रियर्सन इनका भाषा के रूप में भी उल्लेख करते हैं और उन्हें पश्चिमी हिंदी की 'किताबी-हिंदी' के विपरीत पूर्वी हिंदी भाषा का निर्माण करने वाली बोलियों के तौर पर भी देखते हैं. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1880) : lxxi : v41, 164-165.; (3) ग्रिर्यसन कभी उन्हें 'बिहारी भाषा' की तीन बोलियाँ बताते हैं. देखें, *रिपोर्ट बॉय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी विद एविडेंस टेकन बिफ़ोर द कमेटी ऐंड मेमोरियल्स एड्रेस टू द एजुकेशन कमीशन* (1884) : 273. और (4) कभी ग्रिर्यसन उन्हें एक सीमित इलाक़े में बोली जाने वाली एक ऐसी क्षेत्रीय भाषा की 'बोलियाँ' बताते हैं जिन्हें किसी स्वतंत्र मानक के समकक्ष नहीं रखा जा सकता. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 1-2. विविध कालों एवं संदर्भों के दृष्टिकोणों की वजह से यह विवरण कुछ पेचीदा हो सकता है. बहरहाल, जी.ए. ग्रियर्सन जब इन तीनों या किसी एक भाषा को 'बिहारी' भाषा/बोली कहते हैं तो उनका अभिप्राय बिहार में पहले से प्रचलित या मानकीकृत भाषा की उपभाषा होने के बजाय बिहार के नाम से जाने गए क्षेत्र के किसी निश्चित भाग में बोली जाने वाली ज़ुबान से था. इसके पीछे उनका तर्क था कि जिस तरह बांग्ला को बंगाल की भाषा माना जाता है वैसे ही बिहार की भाषा को इंगित करने के लिए 'बिहारी' जैसे 'स्थानीय नाम' का इस्तेमाल किया जाता है. लेकिन यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर पर ध्यान दिया जाना चाहिए : उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब ग्रिर्यसन इन भाषाओं के विषय में लिख रहे थे तो 'बिहारी' नामक जन-भाषा में ये तीनों भाषाएँ शामिल थीं. तब इनमें किसी भी एक भाषा को मानक भाषा का दर्जा हासिल नहीं था.

[2] बख़्तियार खिलजी द्वारा ओदांतपुरी बिहार अथवा 'हिसार- ए- बिहार' के क़िले पर चढ़ाई के उपरांत बिहार नाम उन इलाक़ों के लिए इस्तेमाल किया गया जिन्हें तुर्क-अफ़गानों ने जीत कर मिला लिया था. बिहार शब्द के प्रयोग के पीछे सम्भवत: बौद्ध मठों— विहार, की प्रेरणा भी थी. यद्यपि बिहार को प्रशासनिक इकाई का दर्जा पहले अफ़गान शासक शेरशाह सूरी ने दिया. इस प्रक्रिया को अंतिम रूप सम्भवत: अकबर के काल में 1575 के आस-पास दिया गया. बिहार की सीमाओं का विस्तार बाद में शाहजहाँ और औरंगज़ेब के राज्यकाल में हुआ. लेकिन कुछ इलाक़े, जो अब बिहार का हिस्सा हैं, पहले मुग़लों के शासन में बंगाल सूबे के अंतर्गत आते थे. विस्तृत जानकारी के लिए देखें, आर.आर. दिवाकर (1959) : 51-59.

[3] वही : 626-630.

[4] बिहार का क्षेत्र उत्तर भारत के गांगेय मैदानी भागों में स्थित था. गंगा का मौजूदा ऊपरी मैदानी भाग उत्तर प्रदेश (औपनिवेशिक काल में यह क्षेत्र उत्तर-पश्चिमी प्रांत और बाद में संयुक्त प्रांत जिसमें आगरा और अवध शामिल थे) में है, जबकि निचला भाग बंगाल के डूब-क्षेत्र का अंश था. सारण, चम्पारण, तिरहुत (1877 में दरभंगा एवं मुज़फ़्फ़रपुर के बीच विभाजित किया गया), भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, पटना, गया और शाहाबाद ज़िलों को बिहार में शामिल किया गया. देखें, आनंद ए. येंग (1998) : 14-15.

[5] देखें, फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2002) : 2.

[6] बिहार की भाषाई विविधता एवं स्वायत्त क्षेत्र की स्वीकृति के बावजूद क्रिस्टोफ़र किंग ने इसे स्वतंत्र अध्ययन के लायक़ नहीं समझा. देखें, सी.आर. किंग (1994) : 7-8. किंग बिहार के बारे में प्रत्यक्ष चर्चा देवनागरी और कैथी लिपि के प्रयोग के संदर्भ में करते हैं, लेकिन वे न तो बिहार में भाषा की स्थिति पर और न ही हिंदी के साथ बिहार की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के संबंध पर कोई चर्चा करते हैं. देखें, क्रिस्टोफ़र किंग (1994), वही : 72-74. हाल में आई हितेंद्र पटेल की पुस्तक बिहार में हिंदी भाषा के इतिहास का अध्ययन पेश करती है, लेकिन पूरी चर्चा हिंदी आंदोलन पर केंद्रित है जिसमें हिंदी-उर्दू विवाद का दृष्टांत सामने रखकर प्रांत की साम्प्रदायिक अस्मिता का अध्ययन किया गया है. देखें, हितेंद्र पटेल (2011).

[7] फ्रंचेस्का ओर्सीनी और आलोक राय जैसे अध्येताओं ने भी उत्तर पश्चिम प्रांतों को ही केंद्र में रखा है. देखें, फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2009)

औपनिवेशिक काल के दौरान हुए हिंदी–उर्दू विवाद की छाया का हावी रहना।[8] पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदी–उर्दू विवाद के विस्तार से जुड़े सरोकारों की जड़ें ब्रिटिश शासन के आरम्भिक दिनों में ही देखने को मिल जाती हैं। औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा उत्तर भारत की भाषाओं से जुड़े प्रश्नों को उठाया गया।[9] यह पहलू बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में उठाया जा चुका था कि उत्तर भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों पर संवाद के लिए भाषा के किस प्रभावी रूप को अपनाया जाए।[10] इन चर्चाओं के भीतर हिंदी और उर्दू की स्वीकार्यता ने भविष्य की चर्चाओं पर भी दूरगामी प्रभाव छोड़ा।

इस प्रभाव से हटते हुए यह लेख एक जटिल प्रश्न खड़ा करता है : क्या जिस क्षेत्र को आज हम आधुनिक भारत में बिहार प्रदेश के नाम से जानते हैं उसे एक विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र माना जा सकता है? अतीत में अलग–अलग ऐतिहासिक मुक़ामों पर इस क्षेत्र की सीमाएँ बदलती रही हैं, लेकिन इसके बावजूद वे बिहार के नाम से ही जानी जाती थीं। शोध के अभाव में इस जटिल प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है। यह प्रश्न इसलिए भी कठिन प्रतीत होता है क्योंकि बिहार में बोली जाने वाली भाषाएँ और उसकी संस्कृति महज़ अपनी राजनीतिक–प्रशासनिक सीमाओं तक सीमित नहीं हैं। मगही ही एकमात्र भाषा है जिसका व्यवहार–क्षेत्र बिहार तक सीमित है।[11] लेकिन मैथिली और भोजपुरी दोनों बिहार के बाहर भी बोली जाती हैं।[12] यह तथ्य ध्यान देने लायक़ है कि भोजपुरी का व्यवहार–क्षेत्र सिर्फ़ बिहार तक सीमित नहीं है बल्कि इसका प्रभाव उत्तर प्रदेश और नेपाल के इलाक़ों तक व्याप्त है। यानी भोजपुरी के सांस्कृतिक जगत का विस्तार भारत की राजनीतिक इकाई के बाहर भी जाता है।

यह कहना तो मुश्किल है कि आज की बिहारी अस्मिता का अस्तित्व–भाव अतीत की दृष्टि से कितना पुराना है। इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि अतीत में बिहार के भीतर तीन भाषाई क्षेत्र थे। इन्हीं तीन क्षेत्रों में मैथिली, भोजपुरी और मगही व्यवहार की भाषा है। मैथिली की न केवल लिखित साहित्यिक परम्परा है बल्कि उसके उदाहरण पूर्व–औपनिवेशिक काल में भी मिलते हैं जो भोजपुरी और मगही से प्राचीन हैं। आज भोजपुरी के लोकगीतों और लोक–साहित्य का अधिकांशत: प्रकाशित विशाल एवं समृद्ध भण्डार मौजूद है।[13] इसका बड़ा भाग मौखिक रूप में ही था। उन्नीसवीं सदी के दौरान इसका संकलन और प्रकाशन हुआ।[14] यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है कि बिहार की क्षेत्रीय भाषाएँ अपने क्षेत्रीय सांस्कृतिक जीवन की विशेषताओं का बख़ूबी प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके अलावा एक और पहलू है जिसके तहत

तथा आलोक राय (2000).

[8] इस क्षेत्र के आरम्भिक लेकिन महत्त्वपूर्ण अध्ययन के लिए देखें, शारदा देवी विद्यालंकार (1969) : 28–34. इस क्रम में वसुधा डालमिया की भारतेंदु हरिश्चंद्र पर केंद्रित रचना हिंदी के संदर्भ की बारीक पड़ताल पेश करती है. यह अध्ययन उत्तर भारत के कई जटिल पहलुओं को गहराई से समझने का प्रयास करता है. देखें, वसुधा डालमिया (1997). ओर्सीनी की पुस्तक भी हिंदी और अन्य उत्तर भारतीय भाषाओं के अध्ययन को सही दिशा में ले जाने का सार्थक प्रयास करती है.

[9] देखें, बर्नार्ड कोह्न (1997) : 16–56. और शारदा देवी विद्यालंकार (1969) : 29–30.

[10] हिंदी और हिंदुस्तानी अथवा उर्दू के आपसी अंतर की जड़ें उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में कलकत्ता में स्थापित फ़ोर्ट विलियम कॉलेज तक जाती हैं. यहाँ से प्रकाशित होने वाली पाठ्य–पुस्तकों को गद्य की दो स्वतंत्र शैलियों— हिंदुस्तानी और खड़ी बोली, हिंदी का नाम दिया गया. 1800 में जब इस कॉलेज की स्थापना की गयी तो वहाँ जॉन बी. गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में हिंदुस्तानी का विभाग भी स्थापित किया गया. बाद में 1802 में भाखा (ब्रज भाषा) मुंशी के लिए अलग से नियुक्ति की गयी. हिंदुस्तानी विभाग में पहले 'हिंदी पण्डित' अथवा 'हिंदी मुंशी' और फिर अन्य भारतीय अध्यापकों को सम्मिलित किया गया. *खड़ी बोली* हिंदी की अवधारणा का स्पष्ट प्रयोग लल्लूजी लाल, सदल मिश्र और गिलक्रिस्ट द्वारा क्रमश: 1803, 1805 और 1803 के प्रकाशनों में किया गया. देखें, शारदा देवी विद्यालंकार (1969), वही : 41–47.

[11] मगही पटना, गया और हज़ारीबाग के साथ–साथ पलामू के पश्चिमी भाग में तथा बिहार के मुंगेर और भागलपुर के हिस्सों में भी बोली जाती है.

[12] मैथिली बिहार के दरभंगा, मुज़फ़्फ़रपुर, भागलपुर, सहरसा और पूर्णिया आदि इलाक़ों में बोली जाती है. भोजपुरी का क्षेत्र सबसे विशाल है. यह बिहार के अनेक ज़िलों में बोली जाती है जैसे कि चम्पारण, सारण, शाहाबाद, पलामू और राँची आदि. बिहार के बाहर यह वाराणसी और गोरखपुर के कई जनपदों में भी बोली जाती है जो उत्तर प्रदेश और नेपाल तक फैले हुए हैं. देखें, उदय नारायण तिवारी (1960) : xxxiii.

[13] उदाहरण के लिए देखें, पाँच खण्डों में प्रकाशित. रामनरेश त्रिपाठी (सं.) (1986).

[14] ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारी जी.ए. ग्रियर्सन की इस क्षेत्र में प्रधान भूमिका रही. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 207–67.

बिहार को उत्तर भारत के हिंदी क्षेत्रों से अलग किया जा सकता है। यह है बिहार के भीतर हिंदी और उर्दू की भिन्न स्थिति। इस पर लेख के अगले हिस्से में प्रकाश डाला गया है।

बिहार में हिंदी और उर्दू

उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक बिहार में 'हिंदी' और उर्दू के बीच का रिश्ता भाषा की दृष्टि से अहम है। पश्चिमोत्तर प्रांत की अपेक्षा बिहार में इन दो भाषाओं के बीच टकराव के तत्त्व न के बराबर थे। इसका प्रधान कारण था पटना शहर में क़ायम 'हिंदी' और 'उर्दू' का समन्वय।[15] अठारहवीं सदी के दौरान ही पूर्वी भारत में पटना शहर फ़ारसी और उर्दू संस्कृति का प्रमुख केंद्र बन गया था। जब मुग़ल साम्राज्य कमज़ोर हुआ तो फ़ारसी और उर्दू के कई प्रमुख शायर इस शहर में आ कर बस गये।[16] यद्यपि नील और अफ़ीम का बाज़ार कमज़ोर पड़ने लगा था फिर भी पटना का व्यापारिक अस्तित्व क़ायम था। उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिस्से तक व्यापारिक वस्तुओं का कलकत्ता से आगमन जारी था। विभिन्न इलाक़ों में माल की आपूर्ति को रेल के आने से बल मिला। 1850 के बाद प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित करने का काम आरम्भ हुआ।[17] इसी पृष्ठभूमि में छपाई और हिंदी समाचार पत्रों के प्रकाशन को समझने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप बिहार में साहित्यिक जगत का विस्तार हुआ और बौद्धिक गतिविधियाँ तेज़ हुईं। इसी संदर्भ में क्रमशः 1874 और 1880 में हिंदी पत्र *बिहार बंधु* और खड्गविलास प्रेस की स्थापना हुई।[18] पटना शहर में फ़ारसी और उर्दू साहित्यिक तहज़ीब के व्यापक प्रभाव को भी बिहार की स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए उर्दू कविता की प्रधान शैली ग़ज़ल को बिहार की स्थानीय भाषाओं ने भी अपनाया। भोजपुरी में भी शेर लिखे गये। उदाहरण के लिए बेदिल जैसे प्रसिद्ध शायर को देखा जा सकता है जिन्होंने एक उर्दू शेर दो अलग लफ़्ज़ों में दो अलग मौक़ों पर पढ़ा :[19]

सर ऊपर कोई नहीं तब दुसमन आपन कीस
पटना नगरी छोड़ दीन अब बेदिल चले बिदेस

यह शेर लिखा तो उर्दू में गया है, लेकिन इस पर मगही भाषा की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। दोनों ही पंक्तियों में कर्ता के रूप का अंत मगही भाषा में किया गया है, उर्दू में नहीं। उर्दू साहित्यिक शैली के प्रति यह उदारता दर्शाती है कि बिहारी भाषाओं के प्रति उर्दू की जो स्वीकार्यता थी, वह उन्नीसवीं सदी के पश्चिमोत्तर प्रांत में 'हिंदी' और उर्दू के बीच प्रायः अनुपस्थित रही। यह 'हिंदी' और उर्दू के परस्पर विरोधी संबंधों का ही नतीजा था कि उर्दू शायरी को हिंदी कविता के साथ जोड़ने का प्रयास नहीं किया गया। 'हिंदी' और उर्दू के बीच का यह अंतर ही था जिसने पश्चिमोत्तर प्रांत में पहले ब्रज भाषा को कविता के लिए अपनाया और बाद में खड़ी बोली को। लेकिन ठीक इसके विपरीत बिहार में उर्दू शैली को बिहारी भाषाओं के तहत प्रयोग करने की पहल हो चुकी थी। ग़ज़ल लिखने की परम्परा का आरम्भ भोजपुरी के माध्यम से हुआ जो बिहारी संस्कृति का नया सांस्कृतिक आयाम था। दुर्भाग्यवश, ऐसी शुरुआत 'हिंदी' में नहीं हुई। उदाहरण के लिए कवि तेग़ अली द्वारा 23 ग़ज़लों का दीवान 1895 में *बदमाश दर्पण* के नाम से प्रकाशित हुआ।[20] उर्दू के प्रति इस विमुखता

---

[15] इसके लिए देखें, अख़्तर उरनावे (1989) : 156. कई विद्वानों ने अठारहवीं सदी में बिहार को फ़ारसी और उर्दू संस्कृति का प्रमुख केंद्र माना है. उदाहरण के लिए देखें, आर.आर. दिवाकर (1959) : 715.; सुरेंद्र गोपाल (1982) : 60–6.

[16] सुरेंद्र गोपाल (1982), वही : 70.

[17] दिवाकर (1959), वही : 717–719.

[18] धीरेंद्रनाथ सिंह (1986) : 82–97.

[19] अख़्तर उरनावे (1989), वही : 156.

[20] नारायण दास (सं.) (2002), *बदमाश दर्पण,* वाराणसी. (मौलिक रचयिता तेग़ अली, भारतेंदु के समकालीन. इसका अगर मूल नहीं तो एक आरम्भिक संस्करण *बदमाश दर्पण* के शीर्षक से ही वाराणसी स्थित भारत जीवन प्रेस से 1895 में छपा था.)

का परिणाम था कि पश्चिमोत्तर प्रांत में उर्दू शब्दों के प्रयोग के कारण राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को भेदभाव का सामना करना पड़ा। इस तरह का भेदभाव उनके लेखन को बिहार में नहीं झेलना पड़ा।

शिवप्रसाद के रचना-काल में उत्तर भारत के ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों एवं भारतीय बुद्धिजीवियों के समक्ष बहस का यह अहम मुद्दा था कि स्कूली 'हिंदी' पाठ्य पुस्तकों की भाषा कैसी होनी चाहिए। शिवप्रसाद ने अपनी पुस्तकों में 'हिंदी' के साथ-साथ उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया था। भारतेंदु मण्डल के लेखकों ने भाषा के इस दोहरे प्रयोग को आड़े हाथों लिया।[21] शिवप्रसाद पर इन लेखकों का आरोप था कि वे अपनी पुस्तकों में अभिव्यक्ति के उन रूपों को शामिल नहीं कर पाए हैं जिन्हें सही 'हिंदी' का रूप माना जाता है। इस बहस के परिणामस्वरूप 'हिंदी' के जिस रूप को उचित माना गया उसमें उर्दू शब्दों से परहेज़ को प्रोत्साहित किया गया। पश्चिमोत्तर प्रांत में पाठ्य पुस्तकों की माँग ने 'हिंदी' के इस रूप को प्रचलित कर दिया और प्रांत के बुद्धिजीवियों ने हिंदी के इस रूप पर स्वीकृति की मुहर लगा दी। नतीजतन पश्चिमोत्तर प्रांत में गद्य के जिस स्वरूप का उदय हुआ उसमें से उर्दू शब्दों को ज़बरन निकाला गया और भाषा के जिस मिश्रित रूप का प्रयोग शिवप्रसाद कर रहे थे उसे पराया मान लिया गया। इसके विपरीत बिहार के भीतर ऐसा कोई सीधा विभाजन 'हिंदी' और उर्दू के बीच नहीं खड़ा किया गया और यही कारण था कि शिवप्रसाद की पुस्तकों को किसी विशेष प्रतिबंध का सामना नहीं करना पड़ा।[22] इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि उस समय शिवप्रसाद की सभी पुस्तकें बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं।[23]

इतिहासकार पापिया घोष द्वारा उन इतिहासकारों की आलोचना अहम है जिन्होंने मुस्लिम अस्मिता को केवल इस्लाम की तरफ़ झुका हुआ माना है। इस बिंदु को ध्यान में रखने से साफ़ हो जाता है कि पश्चिमोत्तर प्रांत में 'हिंदी' से उर्दू शब्दों का बहिष्कार तो हुआ, लेकिन ठीक ऐसा बिहार में नहीं हुआ जबकि वहाँ भी मुस्लिम आबादी का बड़ा हिस्सा रहता था। इसके विपरीत बिहार में ऐसे लोग थे जो 'हिंदी' और उर्दू के आपसी मिश्रण को पसंद करते थे। यही कारण था कि राधिका रमण सिंह जैसे लेखक के 1936 में प्रकाशित उपन्यास *राम-रहीम* की भाषा में 'हिंदी' और उर्दू के मिश्रण को विशेष तौर पर सराहा गया। इस उपन्यास की मिश्रित भाषा की लोकप्रियता का ही नतीजा था कि उनके लेखन पर 1991 में संस्मरण अंक प्रकाशित हुआ जिसमें कई लेखकों ने उनकी भाषा की विशेष रूप से प्रशंसा की।[24]

बिहार में पश्चिमोत्तर प्रांत जैसे तीखे भाषाई विभाजन की ग़ैरमौजूदगी दर्शाते हुए औपनिवेशिक अधिकारी सी.डब्ल्यू. क्रॉफ़्ट ने 1875 में लिखा था :

> वर्तमान हिंदी लेखन, जिसे शुद्ध हिंदी कहा जाता है, के भीतर संस्कृत शब्दों की भरमार नज़र आती है। एक ओर तो यह भाषा बिहार के आम लोगों की भाषा से कहीं मेल नहीं खाती, और दूसरी ओर यह अदालती भाषा और दिल्ली की प्रकाशित भाषा से भी अलग है। इसके बावजूद ब्राह्मण और मुसलमान जब आपस में मिलते हैं तो उन्हें लगता है कि भाषा का एक आम रूप मौजूद है जिसे दोनों आसानी से समझ सकते हैं। यह सही है कि जब कोई उच्च शिक्षित कायस्थ किसी टोल-पण्डित अथवा ब्राह्मण से मुख़ातिब होता है या किसी मुसलमान को सम्बोधित करता है तो अलग शब्दों का चुनाव करता है। ब्राह्मण के सामने वह परंतु (लेकिन), वस्तु, मनुष्य, जैसे शब्दों का और मुसलमान के साथ मगर, चीज़, शख़्स आदि का इस्तेमाल करेगा। अर्थात् वह उस स्थिति को स्वीकार कर लेता है जो दोनों नस्लों की आपसी होड़ और शत्रुता का परिणाम रही है, और जिससे निपटने के लिए सरकार और शिक्षा ने ख़ास प्रयत्न नहीं किया है।[25]

---

[21] भारतेंदु के समकालीन लेखकों की साहित्यिक गतिविधियों के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखें, वसुधा डालमिया (2000), वही.

[22] साहब प्रसाद सिन्हा (1890) : 88-93.

[23] देखें, *रिपोर्ट ऑफ़ द स्कूल इंस्पेक्टर ऑफ़ बिहार सर्कल टू द कमिश्नर ऑफ़ पटना ऐंड भागलपुर,* पटना, 1873 : 619.

[24] डॉ. गोपाल (1991) : 69-70.

[25] जनरल डिपार्टमेंट, एजुकेशन, लेटर न. 190, राज्य अभिलेखागार, पटना, 1875 : 2.

इस तथ्य के बावजूद कि दोनों सम्प्रदायों के लोगों द्वारा समझे जा सकने वाले भाषा के मिश्रित रूप की मौजूदगी के बावजूद अधिकतर ब्रिटिश अधिकारियों ने औपनिवेशिक भारत में भाषा और शिक्षा सुधार के प्रश्नों पर बिहार प्रदेश में मिश्रित हिंदुस्तानी के स्थान पर हिंदी को ही समर्थन दिया। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध की भाँति उत्तरार्ध में भी अधिकतर औपनिवेशिक अधिकारियों ने उत्तर भारत के भाषाई प्रश्नों पर हिंदी और उर्दू को अलग भाषाओं के रूप में देखने का क्रम जारी रखा। इसके अनुसार हिंदू मत मानने वालों की भाषा हिंदी और मुसलमानों की भाषा उर्दू मान लेने का आग्रह जारी रहा।

ग्रियर्सन एक संकलनकर्ता भी थे जो विविध मौखिक और लिखित सामग्री एकत्र करते थे। इनमें लोक कथाएँ, लोकगीत, कहावतें इत्यादि सम्मिलित थीं। लेकिन उनके संकलन की शैली, दृष्टिकोण और माध्यम अन्य संकलनकर्ताओं से अलग थे। ... न ही उनका एकमात्र उद्देश्य अंग्रेज़ी हुकूमत चलाने के लिए भारतीय मानस के जीवन, समाज व संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करना था।

बिहार में 'हिंदी' का समर्थन

बिहार में 'हिंदी' को प्रभु भाषा का स्थान देने में केवल औपनिवेशिक अधिकारियों की ही नहीं बल्कि बंगाली बुद्धिजीवी समूह के सदस्यों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उदाहरण के लिए *बिहार बंधु* पत्रिका का प्रकाशन पहले 1872 में कलकत्ता से और फिर 1874 से पटना में आरम्भ होना कोई संयोग मात्र नहीं था, बल्कि यह औपनिवेशिक अधिकारियों की बहस और योजनाओं का ही नतीजा था। इन गतिविधियों से बिहार के स्कूलों में हिंदी को माध्यम बनाने के लिए उचित वातावरण बनाने में मदद मिली। इसी कड़ी में *बिहार बंधु* के सम्पादक रामदीन सिंह[26] जैसे व्यक्तित्व के आगमन से 'हिंदी' के व्यापक प्रचार-प्रसार को बल मिला और बिहार की अदालतों में 'हिंदी' को अपनाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। 1875 में पहली बार बिहार में औपचारिक तौर पर लोगों को उर्दू के स्थान पर 'हिंदी' में और देवनागरी लिपि में पत्र व्यवहार का विकल्प प्रदान किया गया।[27] इन्हीं सफलताओं ने भविष्य में आधुनिक भारतीय मानक भाषा के निर्माण में विशिष्ट भूमिका निभायी।[28]

इसी तरह 1890 में *द्विज* नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयास था जिसने बिहार में सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और स्त्री संबंधी प्रश्नों पर गम्भीर चर्चा के लिए मंच प्रदान किया। पत्रिका के शीर्षक से स्पष्ट हो जाता था कि यह तीन प्रमुख हिंदू वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की नुमाइंदगी करती है। इस पत्रिका की अन्य प्रमुख विशेषता थी कि इसमें कई प्रमुख पाठ्यपुस्तकों को धारावाहिक क्रम में प्रकाशित किया गया। इसमें प्रकाशित अधिकांश सामग्री में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके मण्डल के लेखकों, जैसे प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास इत्यादि, की कृतियों को शामिल किया गया। *द्विज* पत्रिका जाति संबंधी प्रश्नों को

---

[26] इनका जन्म 1856 में पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के भोजपुरी बोलने वाले क्षेत्र में हुआ. रामदीन सिंह बाद में अध्यापक बन गये. उन्हें बचपन में अपने नाना के यहाँ साहित्यिक परिवेश मिला. उनके नाना शिक्षा और साहित्य में दिलचस्पी रखने के अलावा कवि भी थे. वे बाबू रामदीन सिंह को भी अच्छी शिक्षा देना चाहते थे. अधिक जानकारी के लिए देखें, हेतुकर झा, धीरेंद्रनाथ सिंह और सुरेंद्र गोपाल (सं.) (1996) : vi-viii. यह भी देखें, डी. सिंह : 95-97.

[27] बिहार की अदालतों में हिंदी का आगमन किस तरह हुआ, इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए देखें, क्रिस्टोफ़र किंग (1994), वही : 72-75.

[28] दिवाकर (1959), वही : 744-745.

प्रमुखता देती थी। इस पत्रिका ने बौद्धिक धरातल पर पश्चिमोत्तर प्रांत के बुद्धिजीवियों के विचारों को ही प्रमुखता दी और बिहार में हिंदी प्रसार का रास्ता सुगम बनाया। इसमें पुनर्प्रकाशित भूगोल की पाठ्यपुस्तक, जिसे कई विद्यालयों में प्रयोग किया जाता था, स्पष्ट रूप से 'हिंदी' एवं हिंदुस्तानी को ही बिहार की भाषा मानती है।[29]

निस्संदेह उन्नीसवीं सदी के अंत में अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा हिंदी को समर्थन दिया जाना 'हिंदी' के विशेष विकास के लिए महत्त्वपूर्ण था। लेकिन इन अधिकारियों का यह रवैया भाषा संबंधी प्रश्नों की विस्तृत जानकारी पर आधारित नहीं था। कुछेक ब्रिटिश अधिकारी तो बिहार की विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की बारीक़ियों के जानकार थे और पश्चिमोत्तर प्रांत और बिहार के आपसी अंतरों को समझते थे। इन विचारों का बाद में हम जायज़ा ले कर दिखाने का प्रयास करेंगे कि 1870 के उत्तरार्ध में बिहार में कार्यरत रहे जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के विचार किस तरह अन्य प्रशासनिक अधिकरियों से विशेष अलग ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने स्थानीय परिस्थितियों की बारीकियों को पेश करके भाषा के प्रश्न को नया परिप्रेक्ष्य भी प्रदान किया।

उन्नीसवीं सदी में बिहारी औपनिवेशिक प्रशासकों के साथ-साथ बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग के कई सदस्यों ने बिहार में 'हिंदी' की स्वीकृति को समर्थन के साथ-साथ प्रशासनिक अथवा शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मजबूत वैचारिक सहयोग भी दिया। जब बिहार में यह बहस हुई कि स्कूली पाठ्यपुस्तकों के लिए किस भाषा को अपनाया जाए तो इन अधिकारियों और बंगाली बुद्धिजीवियों ने मानक 'हिंदी' के विकल्प पर सहमति दी जिसे पश्चिमोत्तर प्रांत में अपनाया जा चुका था। लेकिन प्रदेश की स्थानीय भाषाओं को अपनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया।[30] बिहार में शिक्षा के लिए 'हिंदी' की स्वीकृति में बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग के प्रमुख सदस्य भूदेव मुखर्जी की विशिष्ट भूमिका रही। वे 1877 में पटना में स्कूल इंस्पेक्टर थे।[31] स्कूली पाठ्य पुस्तकों की संख्या में वृद्धि ने बिहार में 'हिंदी' का प्रसार बढ़ाया और इसमें मुखर्जी के प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। भूदेव मुखर्जी के आगमन के तुरंत बाद ही 1888 में बाँकीपुर में खड्गविलास प्रेस की स्थापना के दूरगामी परिणाम हुए।[32] *साहित्य संग्रह* नामक पाठ्य पुस्तक की रचना करने वाले एक अन्य बंगाली बुद्धिजीवी बीरेश्वर चक्रवर्ती ने भी बिहार में 'हिंदी' की स्वीकृति का पक्ष लिया। उन्होंने बिहार में 'हिंदी' को शिक्षा एवं सम्प्रेषण की भाषा बनाने का तर्क देते हुए अपनी पुस्तक के परिचय में लिखा :

> बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर की देख-रेख में बिहार समेत अन्य हिंदी भाषी क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार और अदालतों में उर्दू के स्थान पर हिंदी भाषा की स्वीकृति से प्रदेश की वास्तविक भाषा को विशेष बढ़ावा मिला है। इससे हिंदी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की संख्या में इज़ाफ़ा हुआ है, और चूँकि इस भाषा में पहले से ही महान् शास्त्रीय ग्रंथ मौजूद हैं इसलिए यह उम्मीद की जा सकती है कि यह भाषा जल्दी ही एक उच्च स्तर प्राप्त कर लेगी।[33]

इस तर्क के मुताबिक़ बिहार में 'हिंदी' के समर्थक मानते थे कि स्कूली पाठ्य पुस्तकों को 'हिंदी' भाषा में प्रकाशित करने को समर्थन देना ही सही दिशा में क़दम बढ़ाना है और यही उचित विकल्प भी है। इस काल की रचनाओं में कहीं भी यह तर्क पेश करने का प्रयास नज़र नहीं आता कि बिहार की स्थानीय भाषाओं के विकल्प पर चर्चा की जाए। बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा 'हिंदी' की पक्षधरता

---

[29] *द्विज* पत्रिका (1891) : 8-13.
[30] धीरेंद्रनाथ सिंह (1986), वही : 93.
[31] विस्तृत जानकारी के लिए देखें, ब्रोजेंद्रेनाथ बंद्योपाध्याय (1974).
[32] इस छापेख़ाने के इतिहास के लिए देखें, धीरेंद्रनाथ सिंह(1986).
[33] बाबू बीरेश्वर चक्रवर्ती (1886) : iii-iv.

के मुक़ाबले हम यहाँ ग्रियर्सन के आलोचनात्मक नज़रिये पर भी ध्यान देंगे जिन्होंने 'हिंदी' से हट कर 'बिहारी' बोलियों के पक्ष में अपना तर्क दिया।[34] ग्रियर्सन के इस आग्रह के ख़िलाफ़ बाबू राधिका प्रसन्न मुखर्जी ने लम्बा आलेख पेश किया। मुखर्जी को लग रहा था कि ग्रियर्सन के विचारों को अन्य अधिकारियों का समर्थन भी प्राप्त हो सकता है, इसलिए उन्हें लागू होने से रोकना ज़रूरी है। मुखर्जी का यह डर उनके कुछ आरम्भिक वक्तव्यों में स्पष्ट देखा जा सकता है :

> ज़ाहिरा तौर पर वे ऐसी जन-भाषा की वक़ालत करते हैं जिसे साधारण लोग भी समझ सकें। बंगाल सिविल सेवा के श्रीमान ग्रियर्सन ने इस वर्ग के विचारों को व्यक्त किया है। बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर सर जॉर्ज कैम्पबेल की इस अधिकारिक घोषणा ने कम खलबली नहीं मचाई है कि सड़क की भाषा को ही साहित्य की भाषा बनाया जाएगा। तब से ले कर अब तक ऐसे कई अधिकारी एवं ग़ैर-अधिकारी हैं जो इस सिद्धांत के समर्थक बन गये हैं।[35]

बिहार में शिक्षा के लिए 'हिंदी' की स्वीकृति में बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग के प्रमुख सदस्य भूदेव मुखर्जी की विशिष्ट भूमिका रही। वे 1877 में पटना में स्कूल इंस्पेक्टर थे। स्कूली पाठ्य पुस्तकों की संख्या में वृद्धि ने बिहार में 'हिंदी' का प्रसार बढ़ाया और इसमें मुखर्जी के प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। भूदेव मुखर्जी के आगमन के तुरंत बाद ही 1888 में बाँकीपुर में खड्गविलास प्रेस की स्थापना के दूरगामी परिणाम हुए।

ग्रियर्सन द्वारा 'बिहारी' भाषा के समर्थन में लिखित तर्कों के जवाब में मुखर्जी ने चौदह पृष्ठों का लम्बा लेख लिखा जिसकी चर्चा मैं आगे करूँगा।[36] ग्रियर्सन का लेख एक प्रमुख पत्रिका में छपा था। उसके आधार पर मुखर्जी ने सात बिंदुओं का आलेख पेश किया।[37] उन्होंने ग्रियर्सन के तर्कों को ख़ारिज करते हुए बिहारी भाषा को बिहार के प्रशासन एवं कचहरी के लिए अपनाने के ख़िलाफ़ दलील दी।[38] चूँकि इन सभी सात बिंदुओं पर विस्तृत चर्चा करना यहाँ सम्भव नहीं है इसलिए अपने तर्क को ध्यान में रखते हुए कुछ अहम बातें ही की जा रही हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि मुखर्जी इस तथ्य को नज़रअंदाज़ कर देते हैं कि ग्रियर्सन ने आम लोगों की भाषा को अपनाने पर बल दिया था। वे किसी भी हालत में बिहार के भीतर 'हिंदी' का पक्ष त्यागने के लिए तैयार नहीं थे। इतना ज़रूर है कि उन्होंने ग्रियर्सन के इस तर्क को स्वीकार किया कि बिहार की आबादी का दस प्रतिशत हिस्सा ही 'हिंदी' बोलता है जबकि बाक़ी नब्बे प्रतिशत आबादी अपनी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग ही करती है। इसके बावजूद उन्होंने ग्रियर्सन के तर्क का इस प्रकार विरोध किया :

> क्या आबादी के दस प्रतिशत शिक्षित लोग शेष नब्बे प्रतिशत आबादी से कोई अलग क़िस्म की भाषा बोलते हैं? और क्या बाक़ी आबादी की भाषा को ही साहित्य की मानक भाषा बनाने की दावेदारी की जा रही है? दूसरे शब्दों में, क्या आम लोगों की

---

[34] बिहार की भाषाओं एवं साहित्य की विशिष्ट अस्मिता के संबंध में जी.ए. ग्रियर्सन की विस्तृत व्याख्या के लिए प्रस्तुत लेख की पाद-टिप्पणी संख्या 76 देखें.

[35] *रिपोर्ट बाइ द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 408-11.

[36] बिहारी भाषा के समर्थन में जी.ए. ग्रियर्सन के विचारों पर चर्चा के लिए प्रस्तुत लेख देखें.

[37] राधिका प्रसन्न मुखर्जी (1880) : 151-168. मुखर्जी जी.ए. ग्रियर्सन (1880) के लेख 'अ प्ली फॉर द पीपल्स टंग' पर प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे.

[38] जी.ए. ग्रियर्सन ने मुखर्जी की बातों का जवाब देते हुए एक अन्य लेख लिखा. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1881) : 363-377.

भाषा पर आधिकारिक भाषा की मुहर लगाने की तैयारी की जा रही है? क्या किसान और मज़दूरों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले शब्दों को विद्वतजनों की भाषा बना दिया जाएगा, और क्या साहित्य महज़ आम जनता के चंद शब्दों तक सीमित होकर रह जाएगा? क्या विद्यापति, तुलसीदास और सूरदास के साहित्य को पदावनत कर उनकी जगह सड़क छाप गीतों को प्रतिष्ठित कर दिया जाएगा?[39]

उनके विचारों की जिस रूप में आलोचना पेश की गयी उससे दिखाई देता है कि मुखर्जी उन बातों का उत्तर देने में विफल रहे जिन्हें ग्रियर्सन ने अपने लेख के माध्यम से उठाया था। यही नहीं, वे उत्तर भारत के भाषाई प्रश्न पर जारी बहस के मुख्य बिंदुओं से भी हट गये। उनका यह तर्क भ्रांतिपूर्ण था कि विद्यापति, तुलसीदास और सूरदास की भाषा आम लोगों की भाषा नहीं है।[40] कई विद्वान दिखा चुके हैं कि इन कवियों को लोकप्रियता मिलने का प्रधान कारण आम लोगों की भाषा में लिखना था। उन्होंने अपने साहित्य की रचना दस प्रतिशत की भाषा में न करके नब्बे प्रतिशत लोगों की भाषा को अपना आधार बनाया। उनके इस लम्बे लेख पर ऐसे कई अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि वे ग्रियर्सन के तर्कों की महत्ता को समझ नहीं पाए। कई अर्थों में मुखर्जी बिहार के उसी बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जो 'हिंदी' को बिहार की भाषा बनाना चाहता था। इस बुद्धिजीवी समूह का प्रभाव इतना बढ़ चुका था कि अपने आर्थिक और सामाजिक रुतबे के बलबूते वे प्रशासनिक नीतियों के स्तर पर अपनी बातें मनवा सकते थे।

बिहारी बुद्धिजीवी वर्ग ने 'हिंदी' भाषा के लिए समर्थन जुटाने में अहम भूमिका निभायी। इसमें बिहारी ज़मींदार वर्ग की भागीदारी प्रमुख रही। इन ज़मींदारों में अधिकतर ऐसे थे जिन्होंने उन्नीसवीं सदी में ही ज़मींदारी प्राप्त की थी। इसके भीतर ऐसे ज़मींदार भी थे जिन्होंने बैकिंग एवं व्यापार के ज़रिये पहले धन कमाया और फिर ज़मीनें ख़रीदीं। उदाहरण के लिए व्यापारी शम्भू शाह ने पहले तम्बाकू, नमक और गुड़ का व्यापार किया। उसके बाद शोरा जैसे पदार्थ का व्यापार किया जिससे बड़ी मात्रा में धनराशि अर्जित की। इसी तरह एक और व्यापारी बनवारी शाह थे जिन्होंने पहले व्यापार से काफ़ी धन कमाया। एक अन्य ज़मींदार शिवगुलाम शाह थे जिन्होंने नमक, शोरा और परिष्कृत व अपरिष्कृत चीनी जैसे पदार्थों के साथ-साथ सरसों का व्यापार किया। इसके पश्चात् उन्होंने बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में ज़मींदारी ख़रीदी। उन्नीसवीं सदी के ये उदाहरण दर्शाते हैं कि किस तरह व्यापारियों ने व्यापार के माध्यम से ज़मींदारी में निवेश किया।[41]

बिहारी बुद्धिजीवी वर्ग के विचार बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग के विचारों के साथ-साथ ज़्यादातर ब्रिटिश अधिकारियों के विचारों से भी मिलते थे। यानी उन्नीसवीं सदी बिहार में 'हिंदी' को समर्थन प्रदान करने में बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग ही शामिल नहीं था। बिहारी बद्धिजीवियों द्वारा 'हिंदी' के प्रति समर्थन का अन्य प्रमुख पहलू पश्चिमोत्तर प्रांत के बुद्धिजीवियों के साथ उनका जुड़ना भी था। इसीलिए उत्तर भारत में मानक 'हिंदी' को उर्दू से अलग स्थापित करने का प्रयास किया गया। अत: बिहारी बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका को महज़ पश्चिमोत्तर प्रांत में 'हिंदी' के विस्तार तक ही सीमित नहीं मानना चाहिए। इस वर्ग ने बिहार में 'हिंदी' के प्रचार-प्रसार के लिए कई माध्यम अपनाए ताकि 'हिंदी' का विस्तार हो सके। उदाहरण के लिए 1891 की *द्विज* पत्रिका के अंक में बंगाल के भूगोल पर केंद्रित लेख में लिखा गया कि बिहार के दो प्रमुख अंग हैं— पूर्वी बिहार में भागलपुर और पश्चिमी बिहार में पटना, इन क्षेत्रों की भाषा हिंदी है अथवा हिंदुस्तानी।[42] इसी समाचार पत्र में इन्हीं तथ्यों को प्रमाणित

[39] रिपोर्ट बाइ द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी : 46-47.

[40] देखें, के. अय्यपा पणिक्कर (1997) : 152-157.

[41] बाबू रामदीन सिंह रचयिता *बिहार दर्पण* : xiv. देखें, आनंद ए. येंग (1998) : 70.

[42] *द्विज* (1891) : 3.

करते हुए दूसरे लेखों में तथ्य दिया गया है कि बिहार की आरम्भिक भाषा सदैव 'हिंदी' रही। इसके लेखक ने लिखा कि 'आरम्भ में सब कुछ हिंदी में ही लिखा जाता था लेकिन राजा टोडरमल के आदेश के अनुसार काम-काज की भाषा फ़ारसी हो गयी और कई हिंदुओं ने फ़ारसी पढ़ना आरम्भ कर दिया। इन परिवर्तनों के जारी रहने के फलस्वरूप ही 'हिंदी' और फ़ारसी भाषाओं का मिश्रण होने लगा और इसके परिणामस्वरूप पश्चिम और उत्तरी इलाक़ों में उर्दू की ओर रुझान बढ़ने लगा।'[43]

बिहारी बुद्धिजीवियों ने समाचार पत्रों के माध्यम से इस मत को फैलाने का प्रयास किया कि बिहार की वास्तविक भाषा 'हिंदी' ही रही है। इसके फलस्वरूप बिहार की अपनी भाषाओं का दावा नज़रअंदाज़ करते हुए उन्हें विकल्प स्वरूप स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि सदैव 'हिंदी' के समर्थन में ही एकजुटता हुई। 1942 में बिहार के इतिहास, भाषाओं और संस्कृति पर केंद्रित स्मारक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ की आश्चर्यजनक बात यह थी कि इसमें कहीं भी बिहार की क्षेत्रीय भाषाओं को शामिल नहीं किया गया। इसके बजाय एक हज़ार पृष्ठों के इस ग्रंथ में 'हिंदी' के महत्त्व को प्रधानता दी गयी। बिहार की अपनी भाषाओं के स्तर पर मैथिली जैसी भाषा को स्वतंत्र भाषा मानने के आग्रह पर लिखा गया :

> जो भाषा बंगाल, असम, ओडीशा, सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र आदि की भाषाओं से अपना सम्पर्क रखना नहीं चाहती और उनको नहीं अपनाती उसे भाषा-क्षेत्र में सम्पूर्ण हिंदुस्तान का प्रतिनिधित्व करने का हिंदी या हिंदुस्तानी कहलाने का क्या अधिकार है? यदि वह ऐसा नहीं कर सकती, तो उसे मैथिली, मगही, भोजपुरी को अपनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है।[44]

इस तरह के वक्तव्य दर्शाते हैं कि बिहारी बुद्धिजीवियों के समक्ष व्यावहारिक दृष्टि से 'हिंदी' का विकल्प ही सम्पूर्ण साधक विषय बन चुका था और बिहार की भाषाओं का विकल्प दुसाध्य एवं अधिकार-क्षेत्र से बाहर मान लिया गया था। किंतु हम बाद में देखेंगे कि न सिर्फ़ यह तथ्य सच्चाई से परे था, बल्कि बिहार के संदर्भ में महज़ एकमात्र विकल्प की ही उपस्थिति नहीं थी।[45]

यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि ग्रियर्सन जैसी शख़्सियत द्वारा बिहारी भाषाओं के पक्ष में तर्क पेश करने के बावजूद बिहारी उच्च-वर्ग अपने मत को स्वीकार करवाने में सफल न हो सका। यही नहीं, शिक्षा एवं सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ वे इसे व्यवहार की भाषा की तरह स्थापित करने में भी सफल नहीं रहे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रचलित सांस्कृतिक संबंधों के साथ-साथ बिहारी बुद्धिजीवियों के पश्चिमोत्तर प्रांत के बुद्धिजीवियों के साथ संबंधों ने भी इसमें अपनी भूमिका निभायी।[46] उदाहरण के लिए बाबू रामदीन सिंह ने *ब्राह्मण* नामक पत्रिका छापने की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ली क्योंकि अर्थिक कठिनाइयों के चलते प्रताप नारायण मिश्र उसका प्रकाशन नहीं कर पा रहे थे। यह पत्रिका पहले कानपुर से छपती थी, लेकिन 15 जुलाई, 1889 से खड्गविलास प्रेस में छापी जाने लगी। भारतेंदु हरिश्चंद्र और बाबू रामदीन सिंह की घनिष्ठ मित्रता का उदाहरण दर्शाता है कि बिहार और पश्चिमोत्तर प्रांत के बुद्धिजीवियों के बीच कितनी नज़दीकियाँ थीं। महज़ रामदीन सिंह के वक्तव्यों के द्वारा ही नहीं बल्कि उनके छापेख़ाने से छपने वाली पुस्तकों की सूची भी इनकी घनिष्ठता का ठोस प्रमाण है जो दर्शाता है कि भारतेंदु की कितनी पुस्तकें खड्गविलास प्रेस से छपती थीं।[47] इन दोनों बौद्धिक

---

[43] वही : 7, 8 ,13.

[44] कुमार गंगादीन सिंह (1942) : 433.

[45] वस्तुत: हमें ऐसे भारतीय बुद्धिजीवियों के बारे में जानकारी नहीं है जिन्होंने बिहार की स्थानीय भाषाओं का समर्थन किया हो, विशेषकर बिहार के उन विद्यालयों में जहाँ हिंदी का प्रयोग नहीं होता था. राहुल सांकृत्यायन और उदय नारायण तिवारी जैसे विद्वान (भोजपुरी के विशेषज्ञ भाषाविद्) उन चंद लोगों में शामिल हैं जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में बिहार की जन-भाषाओं का समर्थन किया था. देखें, पाद-टिप्पणी संख्या 49. 'बिहारी' भाषाओं के पक्ष में जी.ए. ग्रियर्सन की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण थी. उनकी इस भूमिका पर प्रस्तुत लेख में आगे विस्तार से विचार किया गया है.

[46] धीरेंद्रनाथ सिंह (1986), वही : 93-127.

[47] वही : 189-196.

समूहों के आपसी रिश्तों के बूते ही बीसवीं सदी के आरम्भ में मानक हिंदी को अपनाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। लेख के अगले भाग में इन सफलताओं के पीछे निहित कारणों को देखने का प्रयास किया गया है।

मानक हिंदी के पैरोकार

हमने पहले देखा कि भूदेव मुखर्जी जैसे बंगाली बुद्धिजीवियों ने 'हिंदी' पाठय पुस्तकों की संख्या बढ़ाने में विशेष योगदान दिया। साथ ही बिहार की कचहरियों में कैथी के स्थान पर देवनागरी लिपि को स्थापित करने में मुखर्जी जैसे अधिकारियों की विशेष भूमिका थी जिसके फलस्वरूप मानक 'हिंदी' के विकास को सुनिश्चित किया गया। लेकिन बिहार और पश्चिमोत्तर प्रांत के आपसी बौद्धिक आदान-प्रदान ने भी उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र पर 'हिंदी' प्रसार की सफलता का मार्ग प्रशस्त किया। पश्चिमोत्तर प्रांत में बनारस के भारतेंदु हरिश्चंद्र और बिहार में पटना के रामदीन सिंह इस आपसी आदान-प्रदान की सफलता और मित्रता की अहम मिसाल बने। आधुनिक 'हिंदी' के प्रमुख निर्माता के रूप में भारतेंदु का नाम जाना-माना है जिसने उत्तर भारत में 'हिंदी' की पहुँच और उसके प्रभाव को बढ़ाया। रामदीन सिंह को भारतेंदु से मिलवाने वाले मझौली के राजा खड्गबहादुर मल्ल थे और रामदीन सिंह स्वयं बिहार में 'हिंदी' के उत्साही समर्थक थे और प्रदेश में 'हिंदी' के अभाव की परिस्थितियों को बख़ूबी समझते थे। रामदीन सिंह ने 'हिंदी' पाठ्य पुस्तकों के अभाव को पहचान लिया था और इसी कमी को पूरा करने के लिए छापेखाने की स्थापना की। 1880 में बाँकीपुर नामक स्थान, जो पटना शहर की सीमा पर स्थित है, पर खड्गविलास प्रेस की स्थापना हुई। रामदीन सिंह और भारतेंदु के नज़दीकी संबंधों का ही परिणाम था कि खड्गविलास प्रेस में आरम्भ से ही भारतेंदु की पुस्तकों को छापा गया। इन प्रकाशित पुस्तकों में 1886 में छपी 'हिंदी' की पाठ्य पुस्तक *भाषासार* प्रमुख है जिसके निबंधों में भारतेंदु के भी कई निबंध थे। केवल भारतेंदु ही नहीं, बल्कि उनके कई अन्य सहयोगियों के लेखनों का प्रकाशन भी रामदीन सिंह के साथ नज़दीकियों को प्रमाणित करता है। यद्यपि ये पुस्तकें शिक्षा सुधार नीति के तहत स्कूलों में लागू की गयी थीं, किंतु इनमें जोड़ी गयी सामग्री उन्हीं पुस्तकों पर आधारित थी जिनका चलन पश्चिमोत्तर प्रांत में किया गया था। इन पुस्तकों के अधिकांश लेखक पश्चिमोत्तर प्रांत से थे और 'हिंदी' का समर्थक होने के नाते उसके एक विशिष्ट रूप को बढ़ावा दे रहे थे, बावजूद इसके कि उन क्षेत्रों में अन्य भाषाई विकल्प मौजूद थे। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि बिहार में जब इस 'हिंदी' को प्रसारित करने का प्रयास हो रहा था तब उस समय क्यों कोई सामने नहीं आया जिसने स्थानीय भाषाओं का दावा पेश किया हो ? इस प्रश्न का उत्तर है कि ऐसे लोग थे और उन्होंने अपनी दावेदारियाँ की थीं। बिहार के विविध लोगों, समूहों, वर्गों, जातियों, पुरुषों अथवा महिलाओं के बीच 'हिंदी' को प्रदेश की भाषा मानने पर सहमति नहीं थी।[48] ऐसा क्यों हुआ होगा ? लेख का अगला हिस्सा इसी पहलू पर केंद्रित है।

'हिंदी', बिहार की भाषाएँ और ग्रियर्सन

पहली नज़र में प्रशासनिक अधिकारी जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के जीवन और कार्य को देखकर प्रतीत होता है कि औपनिवेशिक अधिकारियों के एकसार लगने वाले समूह के भीतर के अपवादों और स्वरों की विविधता को सुना और महसूस किया जाना चाहिए। यद्यपि ग्रियर्सन अपनी असहमति के

[48] जी.ए. ग्रियर्सन ने इस तथ्य की ओर कई बार इशारा किया था कि स्थानीय बिहारी मानस चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग अथवा उम्र का हो, घर पर स्थानीय बिहारी भाषा ही बोलता है. उसमें केवल एक बहुत छोटा शिक्षित समूह ही 'हिंदी' में बात कर पाता है. यह एक ऐसी भाषा है जिसे वह विशेष रूप से सीखता है. इस प्रकार, आरम्भ में कायस्थ कचहरियों में कैथी लिपि के विरुद्ध और बिहार में बिहारी भाषाओं के विरोध में खड़े थे क्योंकि मुस्लिम सम्प्रदाय की तरह वे सरकारी नौकरियों के लिए लम्बे समय तक फ़ारसी भाषा और लिपि पर निर्भर रहते आये थे, किंतु अपने घरों में वे भी बिहारी भाषा का प्रयोग करते थे. दरभंगा के राजा जैसे अभिजन परिवारों के लोग भी अपने संबंधियों के साथ बिहार की स्थानीय भाषा में ही बात करते थे. देखें, *रिपोर्ट बाय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 273. तथा जी.ए. ग्रियर्सन (1899) : v-vi.

स्वरों को हमेशा मनवाने में कामयाब नहीं रहे, लेकिन वे अन्य ब्रिटिश अधिकारियों की अपेक्षा स्थानीय लोगों के सरोकारों को उजागर करने वाले अपने स्वरों को उठाने से पीछे नहीं हटे। इन स्वरों को सुनने के बाद ही हम उन वैकल्पिक दृष्टिकोणों के माध्यम से ऐतिहासिक विकास के कुछ पहलुओं को उठा सकते हैं। केवल तभी असहमति और उनके भीतर समाहित जटिलता और विकास संबंधी बातों के प्रति स्पष्ट चर्चा की जा सकती है। उन्नीसवीं सदी की भाषा के प्रश्न पर ग्रियर्सन के विचार न सिर्फ़ ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों के विचारों से भिन्नता दर्शाते हैं, बल्कि बंगाली और ज़्यादातर बिहारी बौद्धिक वर्गों के विरोध में भी खड़े नज़र आते हैं।[49] यहाँ मैं देखने का प्रयास करूँगा कि ग्रियर्सन कैसे अन्य समूहों से अलग थे और उनके दृष्टिकोण एवं गतिविधियों के माध्यम से बिहार में 'हिंदी' के इतिहास को किस तरह समझा जा सकता है।

ग्रियर्सन 7 जनवरी, 1851 को काउंटी डबलिन के गलनेगियरी में पैदा हुए। 1873 में बंगाल प्रेसीडेंसी में सिविल अधिकारी के पद पर नियुक्त होने से पहले उन्होंने ट्रिनिटी कॉलेज, डबलिन में गणित की पढ़ाई की। विश्वविद्यालयीय शिक्षा के दौरान उन पर प्रोफ़ेसर रॉबर्ट एटकिंसन का विशेष प्रभाव पड़ा जिनके पास पुस्तकों का एक प्रभावी संकलन मौजूद था। यहाँ ग्रिर्यसन अक्सर आया-जाया करते थे। इस संकलन में भाषा-विज्ञान की पुस्तकों ने ग्रियर्सन को विशेष तौर पर प्रभावित किया। उत्तर भारत की भाषा समस्या का प्रश्न उनके लिए ख़ास दिलचस्पी का विषय बना। एक औपनिवेशिक अधिकारी के रूप में अपनी प्रतिबद्धता निभाने के फलस्वरूप उन्हें बार-बार स्थानांतरण का सामना करना पड़ा जिसके कारण वे 1870 में उत्तर भारत के शिक्षा-सुधार चर्चा में हिस्सा नहीं ले पाए। 1880 में बतौर अधिकारी स्थिर रूप से काम शुरू करने के बाद ही वे भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दे पाए। 1880 में छह महीने की छुट्टी के बाद जब वे ब्रिटेन से लौटे तो उन्हें बिहार का सर्किल इंस्पेक्टर बनाया गया। इसके बाद 1881 में उन्हें पटना का असिस्टेंट मजिस्ट्रेट और कलेक्टर बनाया गया। इस पद पर नियुक्त होने के बाद उन्होंने बिहार की भाषाओं का गहराई से अध्ययन किया। भाषा में उनकी यह दिलचस्पी और इसके फलस्वरूप जो काम उन्होंने किये, वे उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के उत्तर भारत में अन्य ब्रिटिश अधिकारियों और ग़ैर अधिकारियों के काम से कई महत्त्वपूर्ण अर्थों में अलग थे।

ग्रियर्सन एक संकलनकर्ता भी थे जो विविध मौखिक और लिखित सामग्री एकत्र करते थे। इनमें लोक कथाएँ, लोकगीत, कहावतें इत्यादि सम्मिलित थीं।[50] लेकिन उनके संकलन की शैली, दृष्टिकोण

1850 के बाद प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित करने का काम आरम्भ हुआ। इसी पृष्ठभूमि में छपाई और हिंदी समाचार पत्रों के प्रकाशन को समझने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप बिहार में साहित्यिक जगत का विस्तार हुआ और बौद्धिक गतिविधियाँ तेज़ हुईं। इसी संदर्भ में क्रमशः 1874 और 1880 में हिंदी पत्र *बिहार बंधु* और खड्गविलास प्रेस की स्थापना हुई।

---

[49] राहुल सांकृत्यायन (1893-1963) उन कुछेक बुद्धिजीवियों में शामिल हैं जिनके भाषा-संबंधी विचार जी.ए. ग्रियर्सन से मेल खाते हैं. राहुल पश्चिमोत्तर प्रांत के ज़िला आज़मगढ़ में पैदा हुए थे और उन्हें बिहार के विभिन्न इलाक़ों में रहने का अनुभव था. वे भोजपुरी के ज्ञाता थे. जी.ए. ग्रियर्सन की तरह उन्होंने भी बिहार के स्कूलों में हिंदी के स्थान पर भोजपुरी को शिक्षा का माध्यम बनाने के वकालत की थी. देखें, उदय नारायण तिवारी (1960) : xxvi.

[50] एफ़. डब्ल्यू. थॉमस और आर. एल. टर्नर (1943) : 5-7.

और माध्यम अन्य संकलनकर्ताओं से अलग थे। उनके लिए संकलन करना अन्य भारतीय औपनिवेशिक अधिकारियों की पत्नियों अथवा बेटियों द्वारा महज़ शौक़िया तौर पर करने जैसा काम नहीं था। इनमें से कुछेक स्त्रियों ने उत्तर भारत की लोक-कथाओं को संकलित करके इंग्लैण्ड में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। इसके पीछे उनका प्रयास भारत को रहस्यात्मक रूप में पेश करना था।[51] लेकिन, ग्रियर्सन की संकलन संबंधी गतिविधियाँ न तो इस उद्देश्य से प्रेरित थीं, और न ही उनका एकमात्र उद्देश्य अंग्रेज़ी हुकूमत चलाने के लिए भारतीय मानस के जीवन, समाज व संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करना था।[52] निस्संदेह ग्रियर्सन के कामों को प्रशासन चलाने के प्रभावी सरोकारों से अछूता नहीं माना जा सकता। आख़िरकार ग्रियर्सन उसी चिंताधारा के अंग थे। साधना नैथानी जैसी विदुषियों ने ठीक ही दिखाया है कि ब्रिटिश संकलनकर्ता भारत में संकलन-कार्य के दौरान औपनिवेशिक सुरक्षा और विस्तार की शर्तों से मुक्त नहीं थे।[53] लेकिन क्रुक जैसे संकलनकर्त्ता के संदर्भ में ग्रियर्सन संबंधी तर्क सतही जान पड़ता है कि वे भारतीय विषयों के विशेषज्ञ बने क्योंकि उन्होंने संकलित सामग्री को प्रकाशित किया। अत: प्रश्न उठता है कि वे कौन से पहलू हैं जिनके आधार पर ग्रियर्सन को उन्नीसवीं सदी के अन्य संकलनकर्त्ताओं से अलग माना जा सकता है?

तीन कारक हैं जिनके आधार पर ग्रियर्सन को अलग स्थान दिया जा सकता है। सर्वप्रथम, उन्होंने भाषा-विज्ञान के बारे में विशेष ज्ञान एडिनबरा में विद्यार्थी के तौर पर अर्जित किया था। इस अर्जित ज्ञान का बिम्ब उनके लेखन में विशेष तौर पर नज़र आया जब उन्होंने बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश की स्थानीय भाषाओं के समर्थन में लिखा। यह लेखन उनके समकालीन अधिकरियों के विचारों से अलग ही नहीं था, बल्कि उनके तर्क भाषा और भाषा-विज्ञान के अनुशासन में भी रचे-बसे थे। भाषा-विज्ञान का यह परिवेश महज़ उनके लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया की विशाल परियोजना के दौरान ही नज़र नहीं आता बल्कि यह बिहार की स्थानीय भाषाओं के बारे में जानकारी एकत्र करने के दौरान भी परिलक्षित होता है। इसका अहम उदाहरण तब सामने आता है जब वे बिहार की गँवारू बोलियों[54] के व्याकरण की जानकारी को एकत्र करते हैं। डायरेक्टर, पब्लिक इंस्ट्रक्शन को लिखित पत्र में उन्होंने इस तथ्य के बारे में अपनी संतुष्टि व्यक्त करते हुए बताया था कि उन्होंने इस विशाल परियोजना को महज़ छह हफ़्तों में समाप्त करने का प्रस्ताव क्यों रखा। उनके मुताबिक़ इस परियोजना का प्रस्ताव मिलने से पूर्व ही वे उस संकलन का काफ़ी काम कर चुके थे। अपने इस पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि स्थानीय स्तर पर कार्यरत ब्रिटिश अधिकारी बिहारी भाषाओं को समझ नहीं पाते। डायरेक्टर, पब्लिक इंस्ट्रक्शन और उनके बीच फ़रवरी, 1881 को हुई बातचीत के बाद ग्रियर्सन ने पत्र लिखा। इस वक्तव्य को उन्होंने 1883 के अपने लेख, जो बिहार की भाषाओं पर केंद्रित था, में भी लिखा :

> बिहार के कई अधिकारियों ने मुझसे यह शिकायत की है कि उन्हें कचहरी के भीतर गवाहों की गँवारू बोली समझ नहीं आती और बहुत से लोगों ने मुझे यह सलाह दी है कि मुझे इसका व्याकरण तैयार करना चाहिए। उन्हें लगता है कि जैसे वर्तमान में बोली जाने वाली गँवारू बोलियों का पूरे बिहार में एक ही स्वरूप है।[55]

भोजपुरी गीत जैसी सामग्री के संकलन के पीछे ग्रियर्सन का उद्देश्य महज़ स्थानीय भाषाओं के बारे में जानकारी एकत्र करना ही नहीं था। स्थानीय संस्कृति के विविध पहलुओं से संबंधित सामग्री

---

[51] साधना नैथानी (2001 ए) : 64-65.

[52] शाहिद अमीन (सं.) (2005) : 30.

[53] साधना नैथानी (2001 बी) : 183-188.

[54] जी.ए. ग्रियर्सन के अनुसार पूर्वी भारत में दो प्रकार की बोलियाँ प्रचलित थीं. प्रथम, *ठेठ बोली* और दूसरी *खड़ी बोली.* जी.ए. ग्रियर्सन ठेठ को सही और शुद्ध कहते हुए उसे 'निम्न वर्ग की, और ग़ैर-मिश्रित भाषा' मानते थे. वे इस तथ्य का उल्लेख करते हैं कि भाषा के इस रूप को 'गँवारू बोली' या 'देहाती बोली' कहा जाता था. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1880) : 364.

[55] जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 1.

को एकत्र करने के पीछे औपनिवेशिक भारत के समाज और संस्कृति संबंधी ज्ञान को अर्जित करना भी उनका एक उद्देश्य था ताकि ब्रिटिश प्रशासन को चलाने में सुविधा हो सके। ऐसे दस्तावेज़ रोमन लिपि में तैयार किये जाते थे। लेकिन ग्रियर्सन ने बिहार की स्थानीय भाषा की विशिष्टताओं के प्रति संवेदनशील होने के नाते इस सामग्री को देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया।[56] भारतीय लिपि का प्रयोग उनकी विद्वत्ता का एक अन्य उद्देश्य था जिसके माध्यम से वे यह बताना चाहते थे कि कैसे भारत के एक इलाक़े की भाषा दूसरे इलाक़े की भाषा से अलग होती है।[57] भाषा के प्रति अपने इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही वे बिहार की क्षेत्रीय भाषाओं की संरचना एवं अभिव्यक्ति के रूपों को उजागर करने में सक्षम हुए। उनके इस परिवेश ने ही उन्हें जागरूक किया कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उभरने वाली 'हिंदी' अभी निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रही है। ग्रियर्सन ने भोजपुरी गीतों के उदाहरण दे कर दर्शाया कि इनमें प्रयुक्त तद्भव शब्द मानक 'हिंदी' में भी प्रयोग होते हैं और वे बिहार की स्थानीय भाषाओं में अलग तरह से इस्तेमाल किये जाते हैं।[58] अपनी पुस्तक *सैवन ग्रामर* में उन्होंने प्राकृत से निकली बिहारी समूह की बोलियों एवं 'हिंदी समूह की बोलियों' के बारे में समझाते हुए लिखा :

> उस समय उत्तर भारत में प्राकृत भाषाओं के दो रूप प्रचलित थे— एक शौरसैनी जिसमें आज की पश्चिमी गौड़ीय भाषाओं का अधिकांश क्षेत्र शामिल था; और दूसरी भाषा को मगधी कहा था जिसमें पूर्वी गौड़ीय भाषाओं के वर्तमान क्षेत्र का अधिकांश क्षेत्र सम्मिलित था।[59]

उन्होंने आगे लिखा :

> मगधी से निकली यह पूर्वी गौड़ीय भाषा ही एक समय के बाद बिहार की विभिन्न बोलियों, उड़िया, बंगाली और कुछ समय बाद असमिया भाषा में बँटती चली गयी; इसी तरह शौरसेनी से उद्भूत पश्चिमी गौड़ीय भाषाएँ हिंदी की विभिन्न बोलियों सहित पंजाबी, सिंधी और तदनंतर गुजराती में विभक्त हो गयीं।
>
> अत: ऐसा प्रतीत होता है कि बिहारी और हिंदी समूह की बोलियाँ व्यापक रूप से अलग भाषाएँ हैं, लेकिन उत्पत्ति की दृष्टि से दोनों भाषा-समूहों के बीच एक समानता भी देखी जा सकती है: कहा जा सकता है कि हिंदी बोलियों की तुलना में बंगाली का बिहारी से ज़्यादा नजदीकी संबंध है, या इसके उलट बिहारी भाषाओं की तुलना में पंजाबी हिंदी के ज़्यादा नज़दीक बैठती है। इसलिए इसे एक तर्कसंगत क्रम माना जा सकता है कि बंगाली अथवा पंजाबी दो स्वतंत्र भाषाएँ हैं— ठीक वैसे ही जैसे बिहारी और हिंदी समूहों की भाषाओं को एक-दूसरे से स्वतंत्र भाषा माना जा सकता है। अत: भविष्य में मैं इन्हें बोलियों का समूह न कह कर बिहारी भाषा और हिंदी भाषा के नाम से सम्बोधित करूँगा।[60]

यद्यपि ग्रियर्सन ने हिंदी की बोलियों की अपेक्षा बंगाली को बिहारी बोलियों के समीप माना, किंतु उन्होंने अपनी इस आपत्ति को ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के आधार पर समझाया कि यह भाषा अथवा ओड़िया या असमी जैसी अन्य भाषाएँ, जिन्हें पूर्वी इलाक़ों में बोला जाता है, हिंदी की बोलियाँ नहीं हैं। अपने तर्क को समझाते हुए उन्होंने कहा :

> तथ्य यह नहीं है : निस्संदेह हिंदी और यहाँ पर जिन बोलियों को चर्चा का विषय बनाया गया है, आख़िर में अपना उद्भव एक ही स्रोत में ढूँढ़ती हैं। उनकी यात्राओं का प्रस्थान-बिंदु अतीत में

---

[56] जी.ए. ग्रियर्सन ने बिहार के विविध क्षेत्रों से कथाएँ और गीत एकत्र किये और उन्हें *इण्डियन एंटीक्वेरी, नार्थ इण्डिया नोट्स ऐंड क्वेरिस* में प्रकाशित किया. लेकिन उन्होंने इन्हें हमेशा देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया जबकि उनके कई साथियों ने ऐसी सामग्री के लिए रोमन लिपि का इस्तेमाल किया. उदाहरण के लिए उन्होंने आल्हा-ऊदल की कहानी को *इण्डियन एंटीक्वेरी* में प्रकाशित किया और फिर उसमें प्रयुक्त भोजपुरी के पहलुओं की विशेष व्याख्या प्रस्तुत की. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1885 ए) : 209-227.

[57] लिखित बंगाली और ओडिया के बीच के अंतर पर उन्होंने मोध, गुजराती, कैथी और महाजनी के आपसी पहलुओं पर चर्चा की. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1899) : 3.

[58] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 207-267.

[59] जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 5.

[60] वही : 7.

> इतने पीछे है और इन भाषाओं की शाखा-प्रशाखाओं का अलग-अलग दिशाओं में इतना विकास हो चुका है कि उत्पत्ति की साझी जड़ों के अलावा उनमें कुछ भी समान नहीं है।[61]

ऊपर दिये कथन से समझा जा सकता है कि ग्रियर्सन की व्याख्या का आधार वैज्ञानिक अध्ययन था, हालाँकि इसे अन्य विद्वानों ने बाद में चुनौती दी।[62] *सैवन ग्रामर* से उद्धृत वाक्य स्पष्ट करता है कि ग्रियर्सन द्वारा विस्तार से बताने का प्रयास इस तथ्य को स्थापित करना था कि बिहार की भाषाएँ हिंदी नहीं हैं और ये अलग समूह की भाषाएँ हैं। लेकिन एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु है जिसे उन्होंने उठाया और जिसे वे शिद्दत से महसूस करते थे। इस बिंदु को उन्होंने कई बार अलग-अलग संदर्भों में भी उठाया। इसके अनुसार वह भाषा जिसे उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'हिंदी' माना गया वह बिहार के लिए बाहरी भाषा है। अत: उन्होंने 1883 में लिखा :

> दस्तावेजों में की गयी व्याकरण संबंधी बहुत सी भूलों, जिन्हें अधिकतर पढ़े-लिखे लोग करते हैं, के संदर्भ में किताबी हिंदी से अपरिचित लोगों को यह जान कर हैरानी होगी कि बिहार की अदालत में प्रयोग की जाने वाली एक विजातीय भाषा है। प्रत्येक बिहारी की मातृभाषा (बड़े शहरों में पले-बढ़े लोगों को छोड़ कर) हिंदी से उतनी ही अलग है जैसे फ्रांसीसी भाषा इतालवी से। उसकी यह भाषा उस भाषा से भी अलग है जिसे वह राजकीय उच्चतर विद्यालयों में कई साल कड़ी मेहनत करने के बाद सीख पाता है और जिसका अधिकांश हिस्सा वह तब तक भूल चुका होता है जब उस भाषा के इस्तेमाल करने का अवसर आता है। मेरे ख़याल से इस दस्तावेज़ का अध्ययन करने से उन लोगों को अपने सवाल का पर्याप्त उत्तर मिल जाएगा जो अदालती भाषा के तौर पर हिंदी की जगह बिहार की किसी भाषा को प्रतिष्ठित किये जाने का विरोध इस आधार पर करते हैं कि हिंदी पहले से ही अदालत की स्वीकृत भाषा है और उसे बहुत मज़बूत कारणों के बिना इस हैसियत से विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। अगर इन याचिकाओं की व्याकरण संबंधी ग़लतियों से भरी शब्दावली को हिंदी या उर्दू का नाम न दिया जाए तो अदालत की भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति इंग्लैण्ड की उस भाषा से अलग नहीं है जिसे एक ज़माने में वकील लोग अदालत में नॉर्मन-फ्रेंच के नाम से सम्बोधित करते थे। निस्संदेह, बनारस के पश्चिम— पश्चिमोत्तर प्रांत में स्थिति अलग है क्योंकि वहाँ हिंदी भली-भाँति जन-भाषा होने का दावा कर सकती है; लेकिन जहाँ तक बिहार का मामला है तो हिंदी न कभी यहाँ की भाषा थी और न भविष्य में कभी बन पाएगी।[63]

एक दूसरा कारण भी है जिसके आधार पर ग्रियर्सन को सिर्फ़ ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों से ही अलग नहीं माना जा सकता बल्कि वह बंगाली एवं कुछेक शिक्षित बिहारी बुद्धिजीवियों से भी अलग थे। उनके इस अलगाव का कारण था उनका बिहारी आम जनता के प्रति हमदर्दी का भाव।[64] वह जब कभी भी अपने अधिकारिक कार्य के लिए ग्रामीण इलाक़ों का दौरा करते तब उनके तम्बू के आस-पास भारतीय किसानों का झुण्ड इकट्ठा हो जाता था। इस दौरान न सिर्फ़ ग्रियर्सन उनकी गम्भीर समस्याओं को हमदर्दी से सुनते थे बल्कि साथ ही उनके क़िस्से कहानियों और गीतों को भी सुनते जो स्थानीय लोग अपने आनंद के लिए गाते और सुनाते थे। उनकी जीवनी के लेखक ने लिखा है :

> हमें यह जान कर हैरानी नहीं हुई कि जब वे दौरे पर जाते तो भारतीय किसानों की भीड़ उनके ठिकाने पर आती और अपनी कई तकलीफ़ों के बारे में बताती : वह अपनी बात भले ही ठीक ढंग से न कह पाता हो लेकिन इससे उन्हें कोई दिक़्क़त नहीं होती थी और दोनों एक-दूसरे को पिता-पुत्र की तरह प्रेम करते थे।[65]

---

[61] वही : 1.

[62] जॉर्ज कारडोना एवं धनेश जैन (2007) : 18-19.

[63] जी.ए. ग्रियर्सन (1882) : v-vi.

[64] जी.ए. ग्रियर्सन को बिहारी भाषा की व्यापकता का बख़ूबी अंदाज़ा था और वे बिहारी-भाषियों के हित सुरक्षित करना चाहते थे. इसलिए उन्होंने कहा था कि यहाँ एक करोड़ सत्तर लाख लोगों की भाषा दाँव पर लगी है, लिहाज़ा हमें इस विषय पर मिल कर काम करना चाहिए. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1880) : 167. बंगाल की सरकारी नीतियों की आलोचना करते हुए जी.ए. ग्रियर्सन ने कहा कि बिहारियों के लिए हिंदी विदेशी भाषा है और इसे यहाँ कम लोग समझते हैं. देखें, *रिपोर्ट बॉय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 274.

[65] थॉमस ऐंड टर्नर (1943) : 3.

वह सचमुच एक जीवंत माहौल रहा होगा जिसमें ग्रियर्सन इन ग्रामीण साहित्यिक रचनाओं को संवेदना के साथ सुन रहे थे। यह दर्शाता है कि क्यों उनका गहरा रुझान ग्रामीण लोक संस्कृति के प्रति था। दरअअल, वह संस्कृति उनके अंतर्मन को छू रही थी। इन्हीं विचारों को उनकी जीवनीकार ने व्यक्त किया है :

> भारतीय लोक-संस्कृति और उससे संबंधित अन्य विषयों पर उन्होंने *फ़ॉक्-लोर* एवं अन्य कई पत्रिकाओं में संक्षिप्त लेख लिखे। भारतीय कहानियों के भीतर पश्चिमी कहानियों से मिलते-जुलते पात्र एवं कहानियाँ —'वॉटर ऑफ़ लाइफ़', 'द हैडलैस होर्समैन', 'दुर्योधन ऐंड द क्वीन शीबा'; जन्म से जुड़े रीति-रिवाजों, शकुन, लोक-शब्द-व्युत्पति शास्त्र और दिव्यता के प्रकटन संबंधी क़िस्से आदि मिलने पर उन्हें हमेशा ख़ुशी होती थी।[66]

रामदीन सिंह ने 'हिंदी' पाठ्य पुस्तकों के अभाव को पहचान लिया था और इसी कमी को पूरा करने के लिए छापेखाने की स्थापना की। 1880 में बाँकीपुर नामक स्थान, जो पटना शहर की सीमा पर स्थित है, पर खड्गविलास प्रेस की स्थापना हुई। रामदीन सिंह और भारतेंदु के नज़दीकी संबंधों का ही परिणाम था कि खड्गविलास प्रेस में आरम्भ से ही भारतेंदु की पुस्तकों को छापा गया।

ज़मीनी स्तर पर ग्रामीण बिहार के लोगों से लगातार नज़दीकी सम्पर्क और निजी अकादमिक प्रशिक्षण के फलस्वरूप ग्रियर्सन बिहार की भाषाई विविधता को समझ पाए। उनके भीतर अपने समकालीन अफ़सरों की भाँति भाषा के प्रति पूर्वग्रह भी नहीं था। बिहार के साथ अपने क़रीबी अनुभव के आधार पर ही वे इस निष्कर्ष पर पहुँच पाए कि बिहार के लोगों के लिए 'हिंदी' विजातीय भाषा है। लेकिन उनमें इस तथ्य के प्रति सजगता भी थी कि आमतौर पर भारत की भाषाई जटिलता और बिहार की विशेष परिस्थितियाँ यहीं तक सीमित नहीं है। अपनी पुस्तक *सैवन ग्रामर* के परिचय में उन्होंने कई बिंदुओं को उठाते हुए उनके कारणों पर भी प्रकाश डाला। भाषा के इतिहास पर चर्चा करते हुए वे जब यह व्याकरण लिख रहे थे तब उन्होंने कई तथ्यों को उद्धृत करते हुए लिखा कि भाषा के विविध रूप, जिन्हें कुछ पूर्वी गोडियन और कई अन्य पूर्वी न्यूओ-इण्डो-आर्यन कहते हैं, के भीतर असमी, बंगला, ओडिया और बिहार की भाषाएँ शामिल हैं। इन तथ्यों को उजागर करते हुए ग्रियर्सन ने माना कि यद्यपि आमतौर पर इन्हें पूर्वी हिंदी की बोलियाँ मान लिया जाता है, लेकिन यह आपत्तिजनक प्रयोग है। उन्होंने लिखा :

> आमतौर पर इन बोलियों को पूर्वी हिंदी की बोलियाँ कहा जाता है लेकिन यह नाम आपत्तिजनक है क्योंकि इसमें यह भाव निहित है कि ये महज़ तथाकथित हिंदी भाषा की बोलियाँ हैं जिन्हें हम 'बाग़ो-बहार' और 'प्रेमसागर' में पाते हैं। इनके ही बदले स्वरूप को ब्रज भाषा अथवा दोआब की बोलियों में देखा जा सकता है। यह तथ्य सही नहीं है। हिंदी की बोलियों को उनके उद्‌गम के आधार पर आपस में जोड़ा जा सकता है, किंतु इन बोलियों के विस्तार का दायरा इतना व्यापक है और इन बोलियों के विस्तार की शाखाएँ इतनी विविध दिशाओं में फैली हैं कि उनके उद्‌गम के अलावा इनमें अन्य कुछ भी समान नहीं रह गया है।[67]
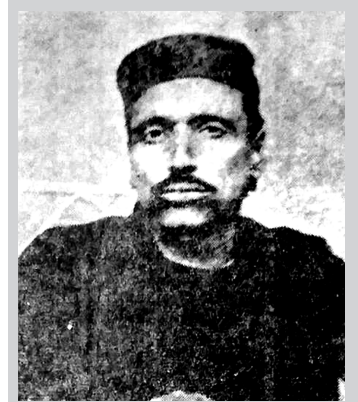
---

[66] वही : 11.

[67] जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 1.

अपनी आपत्ति जताते हुए उन्होंने दूसरा कारण बताया और लिखा :

> इसके अलावा इन्हें 'बोली' न कहने के पीछे दूसरी बड़ी आपत्ति यह है कि जब हम बोली कहते हैं तो अनिवार्य रूप से यह मान लेते हैं कि इस बोली से जुड़ी हुई कोई अभिव्यक्ति ऐसी भी है जिसे मानक माना जा सकता है। और यह बोली उस मानक भाषा का अंग है। यॉर्कशॉयर और समरसेटशॉयर की बोलियों को साहित्यिक अंग्रेज़ी तथा प्रोवेंकल और नार्मन बोलियों को इसी आधार पर साहित्यिक फ्रेंच का हिस्सा माना जाता है। लेकिन यहाँ ऐसी कोई मानक भाषा नहीं है कि तिरहुती अथवा भागलपुरी को उसकी बोलियाँ मान लिया जाए। अतः पूर्वी हिंदी भाषा का कोई मानक रूप उपस्थित नहीं है।[68]

बिहार के कई इलाक़ों में लम्बे अरसे तक रह कर ग्रियर्सन जीवन के कई पहलुओं को नज़दीक से देखने के बाद स्थानीय लोगों के अनुभवों के प्रति संवेदनशील बने। वे यह समझने में सक्षम हुए कि बिहार की परिस्थितियाँ पश्चिमोत्तर प्रांत से एक समान नहीं हैं। इस विविधता को उन्होंने बिहार के विशिष्ट साहित्यिक रूपों के आधार पर समझा। ग्रियर्सन द्वारा बिहार की विशिष्टताओं को समझने की क्षमता उनके नज़रिये का खुलापन था जिसके ज़रिये वे इस क्षेत्र की प्रचलित साहित्यिक विधाओं और भाषाई प्रयोगों को समझ पाए। उन्होंने बिहारी साहित्यिक विधाओं के विशिष्ट स्वभाव को उजागर करने के लिए मगही और भोजपुरी बोलियों के बारे में लिखा :

> यदि किसी समुदाय के पास महाकवियों की कविताएँ उपलब्ध नहीं हैं तो उनके पास गीत अवश्य होंगे। अतः आख़िर की इन दो बोलियों में हमें अनेक मौलिक और कुछ अनुदित गीत मिलते हैं। इन गीतों की ख़ासियत यह है कि उनमें छंद की बंदिशों का बहुत निर्वाह नहीं किया गया है।[69]

अपने अधिकारिक निरीक्षण के दौरान ग्रियर्सन समृद्ध स्थानीय संस्कृति की विविधताओं एवं विशिष्टताओं से मुख़ातिब ही नहीं हुए बल्कि उन्होंने इन्हें व्यवस्थित क्रम से संकलित करना भी आरम्भ कर दिया ताकि प्रदेश की स्थानीय भाषाओं की विशिष्टता और उसके महत्त्व को साबित किया जा सके।[70] संकलित सामग्री द्वारा ग्रियर्सन न केवल बिहार की भाषाओं के अनूठेपन से परिचित हुए, बल्कि प्रदेश की साहित्यिक विधाओं और सांस्कृतिक परम्पराओं के बारे में भी जान पाए। इन विशिष्टताओं को उजागर करने के लिए ग्रियर्सन ने लोकप्रिय गीतों और कहानियों के आधार पर दिखाया कि कैसे एक ही कहानी बिहार समेत पूर्वी भारत की विविध बोलियों के भीतर अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। उन्होंने दिखाया कि उन्नीसवीं सदी भारत के लोकप्रिय गीत, जो 'मानिकचंद का गीत' नाम से प्रसिद्ध है, की रचना बंगाल के रंगपुर क्षेत्र में हुई थी, लेकिन यही गीत बिहार में भी 'गोपीचंद का गीत' नाम से स्थानीय बिहारी भाषाओं में प्रचलित है।[71]

बिहारी संस्कृति के प्रति ग्रियर्सन की संवेदना की गहराई को वहाँ की विकसित सांस्कृतिक और साहित्यिक रूपों की विशिष्टता में देखा जा सकता है। उनका मानस स्थानीय बिहारी जनमानस के भौतिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों में रचा-बसा था— वे उसकी बारीक जानकारी रखते थे। जिस तरह उन्होंने बिरहा गीत के साहित्यिक महत्त्व को उजागर किया, वह उनकी बारीक समझ की तसदीक़ करता है :

---

[68] वही : 1-2.

[69] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 209.

[70] ग्रियर्सन जब पहली बार 1877 में बिहार आये तो उन्होंने बिहारी भाषाओं के अध्ययन का निश्चय किया. 1880 में उनकी बदली पटना में विद्यालयों के निरीक्षक के तौर पर हुई. बाद में, पटना में ज्वाइंट मजिस्ट्रेट बनने पर उन्हें बिहार के दौरे पर जाने अन्य अधिकारियों से स्थानीय ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था के संबंध में जानकारी को प्राप्त करने का अवसर मिला. अपनी संकलित सामग्री के आधार पर उन्होंने मैथिली की दो पुस्तकें संकलित की जिसमें एक *उद्धरणिका* और दूसरी *शब्दावली* थी. 1881 में बंगाल सरकार द्वारा जी.ए. ग्रियर्सन को बिहार की तथाकथित बोलियों का व्याकरण तैयार करने का निमत्रंण दिया गया. देखें, *रिपोर्ट बॉय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 273.

[71] जी.ए. ग्रियर्सन ने निम्नलिखित कहानियों को इन पत्रिकाओं में प्रकाशित किया. (1) जी.ए. ग्रियर्सन (1878) : xlvii : iii, 135-238; (2) जी.ए. ग्रियर्सन (सं.) (1884अ) : 94-150; (3) जी.ए. ग्रियर्सन (1885अ). 'द सोंग ऑफ़ आल्हा मैरिज'; (4) नारायण सिंह तथा जी.ए. ग्रियर्सन (सं.) (1885 ब) : liv :1, 16-35; (5) जी.ए. ग्रियर्सन (सं.) (1885स) : liv :1, 35-55.

गीतों की यह राशि हरेक बलिष्ठ और मज़बूत फेफड़े वाले नौजवान के पास है। वह अकेला हो या समूह में— जब उसके पास करने के लिए कोई काम नहीं होता तो वह इसी गीत-राशि से चुनी हुई कोई तान छेड़ देता है। सम्भवत: उसके पास गायन की एक ही लय है जिसके भीतर वह अपने सभी शब्दों को समेट लेता है। प्रति सेकण्ड बीस से तीस नोट्स के सामान्य उतार-चढ़ाव के द्वारा जैसे-जैसे यह धुन आगे बढ़ती है तो देशज लय से अपरिचित युरोपीय लोगों के लिए यह समझना कठिन हो जाता है कि अमुक गायक कौन-सा गीत गा रहा है। धुनों के इस अभाव की तरफ़ अक्सर मेरा भी ध्यान गया है। देहात के ज़िलों में मैंने किसी नयी धुन के आविष्कार कभी नहीं सुना। ऐसा लगता है कि धुनों का कोई भण्डार पहले से मौजूद है। किसी भी नये गीत के शब्दों को अंतत: इन्हीं धुनों में सँजो दिया जाता है। इस तरह, चक्की पीसने के दौरान गाए जाने वाले गीत की धुन हमेशा एक ही रहती है जिसे 'जतसार' कहा जाता है और इन गीतों को भी यही नाम दिया जाता है।[72]

ग्रियर्सन ने न सिर्फ़ इन गीतों और अन्य मौखिक साहित्यिक रचनाओं को एकत्र किया, बल्कि इन्हें स्थानीय बिहारी भाषाओं में छपवाया भी। इस प्रक्रिया में उन्होंने दो उद्देश्य पूरे करने की कोशिश की। प्रथम, उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि स्थानीय भाषाओं के लिखित साहित्य का अभाव होने का अर्थ यह नहीं है कि उनका साहित्य है ही नहीं। उन्होंने अकादमीय आलेख ही नहीं लिखे, बल्कि मौखिक साहित्य पर आधारित पुस्तिकाएँ भी छापीं। उदाहरण के लिए उन्होंने आल्हा शैली के बारे में पुस्तिका छापी जिसमें उन्होंने गँवारी भाषा की विशिष्टताओं को रेखांकित किया :

बड़े बड़े व्याख्यान लिखने के लिए दोहा, चौपाई, लावणी और आल्हा से अधिक छंदों में सुभीता नहीं होता। इनका सिवाय सादी देहाती के अलावा किसी अन्य भाषा में इसका मजा न आवेगा। विशेषत: आजकल की परिष्कृत हिंदी में प्राप्त व्याप्त समाप्त आदि कठिन काफ़िये इसका मजा और बिगाड़ देते हैं।[73]

आल्हा की गाथा एवं बिरहा गीत जैसी सामग्री, जो मौखिक संस्कृति का अभिन्न अंग थी, उन्हें ग्रियर्सन द्वारा छापने का प्रधान उद्देश्य यही दर्शाना था कि भले ही बिहारी भाषा लिखित रूप अख़्तियार नहीं कर पाई हो, लेकिन उसका अपना साहित्य मौजूद है।[74] इस साहित्य की मौखिक विशेषता किसी भी अर्थ में उनके साहित्य के अभाव को नहीं दर्शाती :

मैं यह नहीं कह सकता कि ये साहित्यिक श्रेष्ठता के गुणों से युक्त हैं, बल्कि इसके विपरीत कुछेक रचनाएँ तो महज़ तुकबंदी हैं। लेकिन ये स्वर जनमानस के आंतरिक विचार एवं महत्त्वाकांक्षाओं का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं।[75]

साहित्य के इन विविध रूपों की खोज करने के दौरान ग्रियर्सन ने कई बिरहा गीतों का प्रकाशन किया। इन्हें छापने का दूसरा उद्देश्य था। ग्रियर्सन स्थापित करना चाहते थे कि बिहार की भाषाओं और साहित्य की अपनी निजी अस्मिता है।[76] उदाहरण के लिए जतसार (अनाज पीसने के दौरान गाये गीत) अथवा कजरी (वर्षा ऋतु के दौरान गाये गीत) विशेष रूप से भोजपुरी में होते हैं जो बिहार में व्यापक स्तर पर बोली जाती है। चूँकि छपाई प्रमुख साधन था जिसके माध्यम से ग्रियर्सन ने इस साहित्य की विशिष्टता को उजागर करने का प्रयास किया।

ग्रियर्सन ने स्वीकारा कि बिहारी बोलियाँ ब्रज भाषा और बांग्ला भाषा जैसी समृद्ध साहित्यिक विरासत की इस तरह धनी नहीं हैं कि बिहारी साहित्य अपने कई महान कवियों के नाम गिनवा सके।[77]

---

[72] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 210.
[73] जी.ए. ग्रियर्सन (1900) : 2-3.
[74] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 209-210.
[75] वही : 211.
[76] जी.ए. ग्रियर्सन ने अनेक स्थानों पर बिहारी साहित्य के अलगाव पर चर्चा की है. उनके विचार में बिहार की बोलियाँ हिंदी से अलग हैं, और उन्हें किसी भी तरह और कभी भी हिंदी के अंतर्गत सम्मिलित नहीं किया जा सकता. वह हमेशा कहा करते थे कि बिहारी भाषाओं में हिंदी के कई शब्दों की उपस्थिति को देखकर यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि ये दोनों समान भाषाएँ हैं. देखें, *द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 274.
[77] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 209.

अपवाद स्वरूप जिसका नाम ग्रियर्सन ने जोड़ा वह चौदहवीं सदी के मैथिली कवि विद्यापति हैं। मगही और भोजपुरी के बारे में ग्रियर्सन ने दोहराया कि ऐसा कोई भी कवि बिहार से नहीं मिलता जिनके नाम से कोई साहित्यिक समूह अथवा विद्यालय गठित किया गया हो।[78] ग्रियर्सन के अनुसार इस अनुपस्थिति का अर्थ यह क़तई नहीं है कि बिहार के लोकप्रिय साहित्य का अभाव है। इसके विपरीत उनके अनुसार भारी संख्या में विशेषकर भोजपुरी गीतों का अस्तित्व प्रमाणित करता है कि साहित्य का अस्तित्व था। ग्रियर्सन ने बिहारी साहित्यिक विशिष्टताओं को इन गीतों के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया। गीतों के इन विविध रूपों और बिरहा गीत पर चर्चा के दौरान ग्रियर्सन ने कई गीतों के माध्यम से बिहारी समाज में व्याप्त मतों, जिनका संबंध देवी-देवताओं से जुड़ा था, को दिखाने का प्रयास किया।[79] लेकिन उन्होंने ऐसे गीतों के बारे में भी चर्चा की जो सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर केंद्रित थे। इन गीतों को प्रकाशित करने से प्रतीत होता है कि ग्रियर्सन बिहार के उन सांस्कृतिक पहलुओं, बिहारी जनमानस के अनुभवों और सांस्कृतिक सरोकारों को उठाना चाहते थे जो साहित्यिक परम्पराओं के महत्त्व से जुड़े थे।

उदाहरण के लिए बिहार में लड़कियों के बचपन से लेकर शादी तक के अनुभव पर आधारित एक बिरहा गीत पर ग्रियर्सन ने विस्तार से चर्चा की।[80] इस चर्चा में दिखता है कि ग्रियर्सन स्वयं इन विषयों के बारे में कितने संवेदनशील थे। इस बिरहा गीत का मुख्य विषय एक विवाहित लेकिन परिपक्व न हो पाने वाली लड़की के बारे में था जो अपने माता-पिता के साथ रह रही है। वह अपने पति के घर में तभी रह पाएगी जब वह परिपक्व हो जाएगी। ऐसी लड़कियों को अपने माता-पिता के घर रहने के दौरान उन शारीरिक परिवर्तनों से गुज़रना पड़ता है जो एक किशोरी से पूर्ण युवती बनने के बीच होते हैं। इन शारीरिक परिवर्तनों को छुपाना आसान नहीं होता। अक्सर ऐसी लड़कियाँ अपने परिवार के अलावा गाँव के अन्य लोगों के ध्यानाकर्षण का कारण बन जाती हैं। इन लड़कियों को यदि कोई इस तरह के ध्यानाकर्षण से बचा सकता है तो वह उनका अपना पति ही होता है जो उन्हें *गौने*[81] की रस्म अदा करके अपने घर ले जा सकता है। इन जवान विवाहित लड़कियों की चिंता, शर्मिंदगी और अपने पति से दूरियों के भाव बिरहा गीत में व्यक्त होते हैं। इनके महत्त्व को ग्रियर्सन ने उजागर किया। अपने पति का इंतज़ार करने वाली इन युवतियों की अशांत भावनाओं को प्रभावी रूप में व्यक्त करने में इन बिरहा गीतों की प्रधान भूमिका थी। अभिव्यक्ति के ये स्वर मानक हिंदी के बनावटी शब्दों में नहीं बल्कि उन शब्दों में व्यक्त किये गये जो बिहार की विशिष्ट भाषाएँ थी :

पिया पिया कहत पीअरि भैलि देहिया
लोगवा कहेला पिड़-रोग
गौंव के लोगवा मरमिओ ना जाने ले
भैले गँवनवाँ ना मोर[82]

ऐसे भावनात्मक एवं साहित्यिक रूपों की ओर ध्यान आकर्षित करके ग्रियर्सन इस तथ्य को उजागर करना चाहते थे कि मगही और भोजपुरी में भले ही बड़े कवियों के नामों का अभाव है लेकिन इसके भीतर बड़ी संख्या में गीत उपलब्ध हैं। इन रचनाओं के अस्तित्व के बारे में ग्रियर्सन की जानकारी

---

[78] वही : 209.

[79] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 196-204.

[80] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 212.

[81] *गौना* बिहार की प्राचीन प्रथा आज भी कई स्थानों पर प्रचलित है. इस प्रथा के अनुसार जब शादीशुदा लड़की वयस्क हो जाती है तो उसे ससुराल भेज दिया जाता है ताकि बतौर पत्नी वह अपना नियमित जीवन आरम्भ कर सके. फ़ैलन ने अपने शब्दकोश में इस भावार्थ का उल्लेख किया है. देखें, एस. डब्ल्यू. फ़ैलन (1879) : 1015.

[82] जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 228.

उनके बिहार में बिताए अनेक वर्षों और अध्ययन का परिणाम थी। यह उनकी अंतर्दृष्टि थी कि बिहार अलग प्रदेश है और बिहार के स्कूलों में मानक 'हिंदी' में पढ़ाई करवाना उन पर हिंदी थोपने के समान है।[83] उन्होंने माना कि यह कठिनाई इसलिए भी है क्योंकि जो लोग 'हिंदी' जानते हैं वे पश्चिमोत्तर प्रांत के निवासी हैं, न कि बिहार के।[84] बिहार के विद्यार्थियों के लिए 'हिंदी' बाहरी भाषा है, इसलिए ग्रियर्सन के विचार में सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिए 'हिंदी' का प्रसार ग़लत था।[85] इस प्रकार ग्रियर्सन ने प्रत्यक्ष रूप से कहा कि बिहार के स्कूलों में शिक्षण बिहार की भाषाओं में होना चाहिए ताकि वे कचहरी बिना भय के जा सकें। अदालतों में हिंदी का प्रयोग ठीक ऐसा ही है जैसा कि हमारे अपने अंग्रेज़ी कोर्ट में नॉर्मन फ्रेंच शब्दावली का प्रयोग।[86]

बिहारी भाषाओं की विशिष्टता को पहचान कर ग्रियर्सन ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा और उसकी भाषा नीति के विरुद्ध खड़े हो गए। बिहार के स्कूलों में भाषा के प्रश्न के प्रति अपनी असहमति जताते हुए ग्रियर्सन ने 1885 में बने भारतीय शिक्षा आयोग को अपना नोट भेजा :

> मैं रिपोर्ट के पृष्ठ 343 पर अंकित अनुच्छेद के आधार पर अपनी बात कहना चाहता हूँ। अनुच्छेद में बिहार के 'प्राथमिक विद्यालयों में'' 'हिंदी को' प्राथमिक शिक्षा के 'माध्यम' के रूप में स्थापित करने के विरुद्ध एक 'व्यापक आपत्ति उठाई गयी थी'। इसे एक 'ऐसी भाषा' बताया गया था जिसे उस राज्य के 'अधिकांश भागों के बच्चे' क़तई नहीं समझते और वह उनके अध्यापकों की 'समझ में भी कम ही' आती है। 'आपत्ति का सारतत्त्व' ये है 'पाठ्य-पुस्तकों की हिंदी' एक 'उच्च स्तरीय हिंदी' कही जाती है और 'हालाँकि उसका वह' रूप 'उत्तर भारत के' इलाहाबाद से दिल्ली तक 'फैली बोलियों' से नजदीकी रिश्ता रखता है, लेकिन वह 'पूर्वी समूह'— अर्थात् 'बिहार की बोलियों' से 'नितांत अलग' है, जिन्हें 'विद्यालयों में मानक' अथवा 'भाषा के' साहित्यिक रूप में सावधानी से पढ़ाने की सलाह दी जाती है। इसका 'व्यावहारिक परिणाम ये हुआ है' कि बिहार के 'बच्चों को' अपनी देशज भाषा' सिखाने से पहले एक 'विदेशी' जबान थोप दी जाती है।[87]

ग्रियर्सन ने आगे लिखा :

> मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि यह एक सच्ची बात है। एक लड़के के सामने कुछ शब्द लिखे हुए हैं : पक्का आम खाओ। अगर वह लिपि के अक्षरों से वाकिफ़ है तो उसे बिल्कुल सही तरह से पढ़ लेता है लेकिन इन शब्दों का उसे तब तक कोई अर्थ समझ नहीं आता जब तक गुरु यह अर्थ न समझाएँ कि 'पाकल अमवा खा'। उसे यह बात इसी बिंदु पर समझ आती है कि उसने जिन अक्षरों के युग्म को देखा है उसका अर्थ है कि 'पका आम खाओ' और यह उदाहरण वास्तविकता से दूर नहीं है। ऐसे ही उन्हें अपनी शिक्षा के द्वारा दो दूनी चार अथवा सोलह छँटाक एक सेर होता है—बाहरी शब्दावली से पहले सीखना पड़ता है।[88]

---

[83] बिहार में हिंदी क्यों लागू नहीं की जानी चाहिए, इसके लिए जी.ए. ग्रियर्सन ने कुछेक कारण दिये : (1) बिहार के लोग एक-दूसरे से केवल अपनी भाषा में बोलते हैं (देखिए, जी.ए. ग्रियर्सन, पटना कमिश्नर को जी.ए. ग्रियर्सन का पत्र, 9 मार्च 1885, एजुकेशन रिपोर्ट, बस्ता न. 102, पटना, 1885, कोई पृष्ठ संख्या नहीं है), (2) बिहार के शिक्षित लोग ही हिंदी समझते हैं. उनके लिए भी यह एक परायी भाषा है जिसे वे सीख कर ही प्रयोग कर पाते हैं. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1886) : 207–208.

[84] जी.ए. ग्रियर्सन ने ज़ोर देते हुए कहा कि इसमें संदेह नहीं कि पश्चिमोत्तर प्रांत, बनारस के पश्चिमी इलाक़ों के लिए हिंदी का दावा उचित है क्योंकि यह इन इलाक़ों की जन-भाषा है, लेकिन यह बिहार की जन-भाषा कभी नहीं थी. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1882) : v-vi.

[85] जी.ए. ग्रियर्सन के अनुसार एक भाषा के रूप में हिंदी की रचना विगत कुछ वर्षों का परिणाम है और किसी भी हाल में इसे अधिकारिक भाषा या कचहरी अथवा स्कूलों की भाषा नहीं बनाना चाहिए. देखिए, जी.ए. ग्रियर्सन (1880) : 163. जी.ए. ग्रियर्सन का मानना था कि सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिए हिंदी का प्रयोग करना ग़लत होगा. उन्होंने एजुकेशन कमीशन के समक्ष दिये गये अपने व्यक्तव्य में ज़ोर देकर कहा था कि बिहार के स्कूलों में प्रयोग की जाने वाली बोलियाँ बिहार की बोलियाँ नहीं हैं. उन्हें जनमानस की बोलियों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता. यहाँ वर्नाक्युलर से जी.ए. ग्रियर्सन का अभिप्राय बनावटी हिंदी है, देखें, *रिपोर्ट बॉय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी* : 273.

[86] जी.ए. ग्रियर्सन (1880) : 167.

[87] जी.ए. ग्रियर्सन, पटना के कमिश्नर को जी.ए. ग्रियर्सन का पत्र, पृष्ठ संख्या नहीं है.

[88] वही.

ग्रियर्सन ने परिस्थितियों की विसंगतियों को नज़दीक से देखा जहाँ अध्यापक से ऐसी अपेक्षा थी कि वे 'हिंदी' की पाठ्य पुस्तकों के भीतर सामग्री को बोलियों में अनुवाद करके बच्चों को समझाएँगे। उन विद्यार्थियों के लिए यह सब समझना चुनौतीपूर्ण था। बिहारी विद्यार्थियों की इन कठिनाइयों के प्रति सजग ग्रियर्सन ने अपने पत्र में लिखा कि कैसे ये विद्यार्थी इन कठिन परिस्थितियों का सामना करते थे :

> इसके बाद वह घर जाता है और अपनी स्मृति में उपयोगी हिस्से को दर्ज कर लेता है, लेकिन जल्द ही उस विदेशी भाषा के बोझ को उतार फेंकता है, जिसे उसकी कोई ज़रूरत नहीं है; और बल्कि जिसे वह असल में नापसंद करता है।[89]

अब हम तीसरे और अंतिम कारण पर आते हैं कि क्यों ग्रियर्सन अपने समय के अन्य औपनिवेशिक अधिकारियों और भारतीय बुद्धिजीवियों से अलग थे। उत्तर भारत के भीतर भाषाई प्रश्न पर दोनों ही समूहों की अपेक्षा ग्रियर्सन बिहार के लोगों की आवश्यकता को समझने वाले अधिकारी साबित हुए। हम देख चुके हैं कि बिहार में मानक 'हिंदी' को लागू करने के कड़े आलोचक ग्रियर्सन ने अपने आपको बिहार की स्थानीय भाषाओं के हित में ग़ैर-अधिकारिक प्रवक्ता नियुक्त कर लिया था। बिहार की भाषाओं से जुड़ा हुआ अन्य अहम विषय लिपि के चुनाव से भी संबंधित था कि सरकारी दस्तावेज़ों अथवा कोर्ट पेपर के लिए किस लिपि का प्रयोग किया जाए। लिपि के प्रश्न ने कैथी अथवा देवनागरी के बीच उचित विकल्प के प्रश्न को बिहार के अधिकारियों और बुद्धिजीवियों के बीच मतभेद पैदा किया। पश्चिमोत्तर प्रांत में 'हिंदी' बनाम उर्दू की बहस (देवनागरी अथवा नस्तालिक) के भीतर लिपि का द्वंद्व अभिन्न हिस्सा था और उसने भाषा संबंधी फ़ैसलों को तय करने में अहम प्रभाव डाला।[90] इसके विपरीत, बिहार की परिस्थिति अलग थी। यहाँ पर देवनागरी और नस्तालिक लिपि के इतर तीसरा विकल्प कैथी लिपि के रूप में मौजूद था। बिहार में लिपि प्रयोग से जुड़े विकल्प और इनके लाभ और हानियों के बारे में अधिकारियों की यह राय बरक़रार थी कि वही लिपि उचित होगी जो उभरती 'हिंदी' की आवश्यकता एवं बिहार की क्षेत्रीय भाषाओं की ज़रूरतों को पूरा कर सके। इन अधिकारियों के विचार किसी भी हद तक उन विद्वानों की राय को अपनी जानकारी की परिधि में शामिल नहीं करते थे जिन्होंने उत्तर भारत की भाषाओं के इतिहास और लिपि के प्रश्न का अध्ययन किया था। लेकिन वे अपनी राय अभिव्यक्त करने के महत्त्व को भी जानते थे क्योंकि लिपि भाषा इतिहास का अहम अंग है। अन्य कारणों से भी यह पक्ष महत्त्वपूर्ण था। बिहार में लिपि के प्रश्न पर व्यक्त किये गये विविध मतों और उनको लागू करने के लिए उठाए गये क़दम बताते हैं कि कई अर्थों में बिहार की स्थिति पश्चिमोत्तर प्रांत से अलग थी। उत्तर भारत के भाषाई इतिहास का यह पहलू अध्ययन के अभाव में चर्चा का विषय नहीं बन पाया और अगले अंश में इसी पक्ष को समझने का प्रयास किया है।

कैथी बनाम देवनागरी

बिहार में लिपि के प्रश्न पर सर्वप्रथम जिनके विचारों पर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है वे ग्रियर्सन ही हैं। सिर्फ़ इसलिए नहीं क्योंकि वे इस लेख के प्रमुख पात्र हैं, बल्कि इसलिए भी कि उनके विचार समय के साथ-साथ बदलते भी रहे हैं जो पाठकों को आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकते हैं। इसे विडम्बना ही कहा जा सकता है कि उन्होंने 'हिंदी' की अपेक्षा बिहार की भाषाओं को अपनाने की खुले रूप से वक़ालत की, लेकिन लिपि के प्रश्न पर उनका झुकाव आधिकारिक पक्ष के समर्थन में दिखाई दिया।

---

[89] वही.

[90] उत्तर भारत में लिपि के प्रश्न पर जारी कशमकश एवं चर्चा के लिए देखिए, किंग (1994) : 72-75. तथा आलोक राय (2000) : 17-49.

उन्नीसवीं सदी में बिहार की स्थानीय भाषाओं को लिखने के लिए तीन लिपियों (कैथी, देवनागरी और मैथिली) का प्रयोग किया जाता था।[91] इनमें से मैथिली का प्रयोग महज़ उत्तर मिथिला तक सीमित था। शेष दोनों लिपियों में कैथी का प्रयोग अधिक होता था और वही बिहार की लोकप्रिय लिपि मानी जाती थी। उन्नीसवीं सदी के दौरान औपनिवेशिक अधिकारियों और उत्तर भारत के बुद्धिजीवियों के बीच लिपि का प्रश्न बहस का अहम मुद्दा बन गया कि कैथी अथवा देवनागरी में से किसे अपनाया जाए। ग्रियर्सन ने लिपि के सवाल को उन्नीसवीं सदी के अंत के अपने अनेक लेखनों में उठाया, विशेषकर जब वे कैथी लिपि के लिए रीडर लिख रहे थे।[92] लेकिन बिहार में लिपि के प्रश्न पर उनकी मुखर राय का ठोस सबूत हमें उनके 1911 में लिखित पत्र से मिलता है। यह पत्र दर्शाता है कि उनकी राय समय के अंतराल के साथ परिवर्तित होती रही, जिसका संबंध सरकार के भीतर उनके अधिकारिक पद और उस समय की सार्वजनिक परिस्थितियों के साथ था।

> आमतौर पर मुझे बिहार में कैथी लिपि को लागू करने का श्रेय दिया जाता है। लेकिन यह सही नहीं है। जब कैथी लिपि को लागू किया गया तब मैं अधिकारी के रूप में निचले पद पर नियुक्त था और मुझसे मेरी राय नहीं माँगी गयी। मैंने सिर्फ़ अपने उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन किया। यह सही है कि मैंने अक्सर कैथी को उन प्रांतों में लागू करवाया जहाँ तब तक फ़ारसी लिपि प्रचलन में थी लेकिन मैंने अपने विचारों को कभी छुपाया नहीं कि यदि मुझसे मेरी राय पूछी जाती तो मैं कहता कि कैथी की अपेक्षा मैं नागरी का समर्थक हूँ। किंतु मेरा काम आदेशों का विरोध करने के बजाय महज़ उनका पालन करना था। निजी तौर पर यदि मेरा नियंत्रण होता तो मैं दोनों लिपियों को अपना लेता ताकि नागरी को आम व्यवहार के लिए प्रयोग किया जाए और कैथी का प्रयोग ठीक ऐसे किया जाए जैसे अंग्रेज़ी में *इंटैलिजेंस* का प्रयोग किया जाता है। हालाँकि जहाँ तक तेज़ी से लिखने का प्रश्न है तो नागरी की अपेक्षा कैथी एक अधिक उचित विकल्प है।[93]

उपरोक्त वक्तव्य बताता है कि वे एक समय निम्न पद पर आसीन अधिकारी थे जिनके साथ कोई मशविरा नहीं किया गया था। अतः ग्रियर्सन के लिए व्यावहारिक था कि वह अपने उच्च अधिकारियों के फ़ैसलों को मानें और कैथी का समर्थन करें। उन्होंने कैथी का समर्थन केवल इसलिए ही नहीं किया, बल्कि उनको फ़ारसी की अपेक्षा कैथी बेहतर विकल्प लगता था। लेकिन इसी पत्र में उन्होंने माना कि यदि उनकी राय ली जाती तो वे कैथी की तुलना में नागरी का समर्थन करते। 1911 में उनकी राय अलग थी और उन्होंने दो अलग कारणों से दोनों ही लिपियों को लागू करने का प्रस्ताव दिया ताकि आम कार्यों के लिए नागरी और हस्तलिखित कार्यों के लिए कैथी का प्रयोग जारी रहे।[94]

बिहार की लिपि और भाषा के प्रश्न को अब तक सतही स्तर पर ही समझने का प्रयास किया गया है। ध्यान देने लायक़ पहलू यह है कि सरकारी विचारों को लागू करने के प्रति ग्रियर्सन किसी विरोध की स्थिति में नहीं थे, बल्कि वे बिहार में लिपि के प्रश्न पर सरकारी नज़रिये के साथ सहयोग की मुद्रा में खड़े थे। जबकि एक अन्य औपनिवेशिक अधिकारी की लिपि के प्रश्न पर विशेष भूमिका थी। ये थे राधिका प्रसन्न मुखर्जी जिन्होंने उत्तर भारत की भाषाओं के प्रश्न में सक्रिय दिलचस्पी दिखाई और जिनके विचारों को प्रधानता दी गयी।

---

[91] जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 19.

[92] इसे पहली बार 1881 में प्रकाशित किया गया. 1899 में इसे पुनर्प्रकाशित किया गया. यह उन औपनिवेशिक अधिकारियों के लिए प्रकाशित की गयी थी जो कैथी लिपि नहीं जानते थे. इस पुस्तिका की मदद से वे हस्तलिखित कैथी को आसानी से पढ़ सकते थे. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (1899) : 1. बिहार की लिपि के प्रश्न पर उनके अन्य प्रकाशनों में देखें, ग्रियर्सन (1880) : 151. तथा जी.ए. ग्रियर्सन (1881) : 364-365.

[93] जी.ए. ग्रियर्सन के प्राइवेट पेपर्स, MSS EUR/E223/32.

[94] कैथी की नियमावली से संबंधित अपनी पुस्तिका के परिचय में जी.ए. ग्रियर्सन ने यह उल्लेख किया है कि बिहार की विविध लिपियों के संबंध में बंगाल की सरकार ने क्या क़दम उठाए थे. इनमें सभी अधिकारिक दस्तावेज़ों से उर्दू को हटाने, सभी प्रकाशित दस्तावेज़ों में देवनागरी और हस्तलिखित दस्तावेज़ों में कैथी का प्रयोग करने जैसे क़दम शामिल थे. देखें, जी.ए. ग्रियर्सन (2005) : 1.

यह सचमुच ध्यान देने लायक़ तथ्य है कि एक ओर मुखर्जी ने बिहार के लिए 'हिंदी' को स्वीकार किया, वहीं दूसरी ओर लिपि के प्रश्न पर देवनागरी की अपेक्षा कैथी को अपना समर्थन दिया। मुखर्जी ने लिपि के सवाल पर चार विकल्प प्रस्तुत किये। पहला विकल्प रोमन लिपि था। उनका विचार था कि इसे लागू करने पर जनमानस की अवहेलना होगी। उन्होंने कहा कि यह लिपि भारतीय लिपि से मेल नहीं खाती और इसके भीतर कई कमियाँ हैं एवं यह उपयोगी भी नहीं है। यह स्थानीय लोगों की ध्वनियों का प्रतिनिधित्व भी नहीं करती।[95] उन्होंने फ़ारसी लिपि को अपने दूसरे विकल्प के रूप में पेश किया, लेकिन इससे जुड़े पुराने ऐतिहासिक कारणों की कमियों को बिहार के लिए अनुचित विकल्प माना।

मुखर्जी का तीसरा विकल्प देवनागरी लिपि था। देवनागरी के प्रबल दावे के बावजूद मुखर्जी ने कैथी को देवनागरी की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और उपयोगी माना। यह सचमुच दिलचस्प है कि देवनागरी की सार्थकता का बयान करते हुए भी मुखर्जी ने कैथी लिपि के विषय को मजबूती से पेश किया। उन्होंने कहा :

> सरकार द्वारा फ़ारसी के स्थान पर देवनागरी को अपनाने के विरुद्ध जो आपत्तियाँ दर्ज की गयी हैं, वह निश्चित तौर पर कमज़ोर हैं, लेकिन ये आपत्तियाँ इतनी मज़बूत अवश्य हैं कि उनसे कैथी का रास्ता साफ़ हो जाता है। सर्वप्रथम, इसका रोज़मर्रा के कामकाज में प्रयोग नहीं किया जाता और कैथी की तरह यह व्यापक दायरे में व्याप्त नहीं है। साथ ही, मुसलमान इसे हिंदुओं की पवित्र लिपि के कारण नापसंद करते हैं। तीसरा, इसमें कैथी की तरह तेज़ी से नहीं लिखा जा सकता।[96]

ज़ाहिर है कि जिस तरह मुखर्जी देवनागरी का दावा पेश कर रहे थे उसका उद्देश्य प्रमुख रूप से कैथी के दावे को मज़बूती प्रदान करना था। इसके बाद उन्होंने कैथी के विकल्प को ही अपना अंतिम विकल्प माना। कैथी की तमाम सीमाओं को मानने के बाद भी उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि कैथी का प्रचलन अभी तक बिहार में जारी है।[97] उदाहरण के लिए उन्होंने यह आलोचना मानी कि क्षेत्रीय स्तर पर कैथी लिखने के विविध स्तर प्रचलित हैं। साथ ही संस्कृत, फ़ारसी और अंग्रेज़ी के शब्दों को कैथी लिपि में ठीक से लिखना सम्भव नहीं होता। इसे तेज़ी से पढ़ने में और इसके टेढ़े-मेढ़े आकार के कारण पढ़ने में अशुद्धियाँ पैदा होती हैं। कैथी लिपि की इन सब सीमाओं को स्वीकार करने के बावजूद उन्होंने सभी आरोपों को ख़ारिज कर दिया और शुद्धतावादियों की इस मान्यता का मज़ाक उड़ाया कि देवनागरी ही मात्र एक आदर्श विकल्प है। उन्होंने कहा :

> अवश्य एक स्थानीय शुद्धतावादी वर्ग है जिसे सरकारी कामकाज के लिए कैथी अपनाने में कोई समस्या नहीं दिखाई देती, लेकिन वे इसके संयुक्त व्यंजनों को देवनागरी के नमूने के आधार पर बेहतर बनाना चाहते हैं। वे (देवनागरी) से दो न, तीन स और दीर्घ, लघु और मध्य ए तथा ई जैसी ध्वनियाँ ग्रहण करना चाहते हैं। ऐसे मित्रों को मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि शास्त्रीय भाषाओं की नक़ल करने से वर्तमान बोलियों का कोई भला नहीं होगा; कैथी के मूल चरित्र में असंगत बदलाव करने से वह फ़ारसी और संस्कृत की उन्हीं बेड़ियों में बँध कर रह जाएगी जिनके चलते जन-भाषा अपना विकास नहीं कर पाई है।[98]

बांग्ला भाषा का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि छपाई के माध्यम से इस भाषा में निहित समस्याओं को दूर करके भाषा और लिपि के बीच समन्वय स्थापित किया गया। ठीक इसी तरह कैथी

---

[95] राधिका प्रसन्न मुखर्जी (1880) : 3.

[96] वही : 5. मुखर्जी के इन विचारों को एक अन्य सरकारी दस्तावेज़ में भी प्रकाशित किया गया. देखें, *रिपोर्ट बाई द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी*, 1884 : 399-408.

[97] वही : 5-6.

[98] वही : 6.

लिपि की समस्याओं को भविष्य में दूर किया जा सकता है। मुखर्जी के अनुसार बिहार के निवासियों के लिए यह स्वर्णिम अवसर है जब कैथी को स्वीकार किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश ऐसा बांग्ला के साथ नहीं हुआ और उसे संस्कृत की शुद्ध शब्दावली के स्वरों से पाट दिया गया।[99] बिहार के लिए यह बेहतर समय है जब वह अपनी भाषा को विजातीय प्रभाव से बचा सकता है।

ग्रियर्सन और मुखर्जी के विचार दर्शाते हैं कि बिहार और पश्चिमोत्तर प्रांत में लिपि के प्रश्न पर परिस्थितियाँ एक जैसी नहीं थीं। उत्तर भारत की भाषाओं का अध्ययन करने वाले विद्वान बिहार के भीतर भाषा और लिपि के इन सवालों को अनदेखा नहीं कर सकते। विशेष तौर पर ऐसा इसलिए भी क्योंकि जिस तरह से बिहार का विकास सामने आया उसके भीतर औपनिवेशिक अधिकारी और बिहारी बुद्धिजीवी आम लोगों को भाषा-व्यवहार के जिस मार्ग पर चलाना चाहते थे, उसके लिए ज़मीनी वास्तविकता सदैव तैयार नहीं थी। अदालत के स्तर पर देवनागरी लिपि और 'हिंदी' को लागू कर दिया गया था, लेकिन इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं था कि पारम्परिक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली क्षेत्रीय भाषाएँ एवं लिपियाँ रातों-रात समाप्त हो गयी थीं। बिहारी जनमानस अपने घरों में अपनी बिहारी भाषाओं का ही व्यवहार कर रहा था। घरेलू स्तर पर आज भी वही स्थिति है।

पश्चिमोत्तर प्रांत की अपेक्षा बिहार में कैथी लिपि एक अतिरिक्त विकल्प के रूप में मौजूद थी। इस पहलू को इतिहासकारों ने अब तक गम्भीरता से समझने का प्रयास नहीं किया है। लेकिन, हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते कि कैथी का प्रयोग बिहार के घरों एवं स्कूलों में बीसवीं सदी के आरम्भ तक जारी रहा। कैथी लिपि के इस विकल्प को कई औपनिवेशिक अधिकारियों ने भी समर्थन दिया। देवनागरी के निरंतर विकास के समक्ष बिहार में कैथी का पतन और उसकी समाप्ति से इस बात की तसदीक़ होती है। यह विकल्प उपलब्ध था पर अध्ययनकर्ताओं ने इसे विस्तार से समझने का प्रयास नहीं किया। साथ ही हम इस पहलू के उत्तर भारत के भाषाई इतिहास पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों से भी अपरिचित हैं। मसलन, हम यह नहीं जानते कि बिहार के लोगों ने कैथी के स्थान पर देवनागरी को अपना कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में क्या क़ीमत चुकायी। देवनागरी की अपेक्षा कैथी के फ़ायदे अवश्य थे। जो कैथी लिपि का व्यवहार करते थे उन्हें देवनागरी सीखने की तकलीफ़ उठानी पड़ी होगी। बिहारी लोगों पर इस बोझ को डालने वाले कोई और नहीं बल्कि औपनिवेशिक अधिकारी और उत्तर भारत के बुद्धिजीवी ही थे। जैसाकि हम जानते हैं और इस सिलसिले में हम ग्रियर्सन जैसे अधिकारियों के आभारी हैं जिन्होंने बताया कि तेज़ गति से कैथी में लिखना सम्भव था। लेकिन हम इस पहलू को जानने से वंचित हैं कि इस लिपि से बिहारी भाषा के शब्दों के सटीक उच्चारण को कितना सहयोग मिलता था। ये कुछेक ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में पड़ताल की सम्भावनाएँ अभी बाक़ी हैं।

निष्कर्ष

यह अध्ययन औपनिवेशिक अधिकारियों और स्थानीय बुद्धिजीवियों की उस भूमिका को उजागर करता है जिनका भारत की आधुनिक भाषा के निर्माण में प्रभावी और व्यापक योगदान रहा था। विद्वानों ने इस भूमिका को अब तक नहीं पहचाना है। जो कभी साझी भाषाई और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के हिस्से थे, उन्हें अलग-अलग भाषाओं के नाम से पुकारने की नीति अंग्रेज़ों ने चलाई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके सहयोगियों ने फ़ोर्ट विलियम जैसी संस्थाओं के माध्यम से 'हिंदी' और उर्दू जैसी भाषाओं के लिए बनावटी आधार तैयार किया। निस्संदेह हिंदी और देवनागरी लिपि की माँग पश्चिमोत्तर प्रांत में अहम थी और इसने 'हिंदी'-उर्दू मतभेद को जन्म दिया। इस मतभेद से बहस और चर्चाओं का ऐसा दौर आरम्भ हुआ जिसने औपनिवेशिक भारत के भीतर आधुनिक मानक 'हिंदी'

---

[99] वही : 6-7.

के आंदोलन की नींव डाली। इस आंदोलन ने पश्चिमोत्तर प्रांत के बुद्धिजीवियों के भीतर नयी आधुनिक 'हिंदी' के लिए सहानुभूति और समर्थन जागृत किया। औपनिवेशिक शासन के खिलाफ़ उत्तर भारत के विविध समूहों के लोगों को एकजुट करने में आधुनिक मानकीय 'हिंदी' की ताक़त ने मज़बूती प्रदान की। किंतु यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि जो बात उत्तर भारत के बड़े हिस्से पर लागू हो सकती है, समग्र रूप में पूरे क्षेत्र पर लागू नहीं की जा सकती। यद्यपि ज़्यादातर औपनिवेशिक अधिकारियों और भारतीय बुद्धिजीवियों ने पुरानी भाषा नीति को स्वीकार करते हुए 'हिंदी' और उर्दू को दो अलग-अलग भाषाएँ माना और बिहार एवं पश्चिमोत्तर प्रांत में आधुनिक मानक 'हिंदी' की माँग को समर्थन दिया। लेकिन ग्रियर्सन जैसे अधिकारी दर्शाते हैं कि वे औपनिवेशिक अधिकारियों के बीच भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले थे।

राहुल सांकृत्यायन और उदय नारायण तिवारी जैसे बुद्धिजीवियों के विचारों को इस निबंध में शामिल नहीं किया है। लेकिन इनसे पता चलता है कि बिहारी बुद्धिजीवियों में भी ऐसे स्वर मौजूद थे। ग्रियर्सन के अपने निजी अध्ययन, एक भाषाविद् के रूप में उनके दृष्टिकोण और बिहार के स्कूलों एवं प्रशासनिक कार्यों के लिए स्थानीय भाषाओं को अपनाने के अभियान ने इस सिद्धांत के समर्थन में तर्क देने के लिए सहायता प्रदान की कि बिहारी भाषाओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। उनके विचार में बिहार के भीतर भाषाओं का यह समूह मानक 'हिंदी' की अपेक्षा एक योग्य विकल्प का प्रतिनिधित्व करता था। ग्रियर्सन ने ऐसी सामग्री को विस्तार से संकलित ही नहीं बल्कि प्रकाशित भी किया ताकि यह साबित किया जा सके कि बिहारी भाषाओं में लिखित साहित्य का अभाव नहीं है और इसलिए इसे भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। किंतु यह भी सच है कि उनके इन सभी प्रयासों के बावजूद एवं बिहारी भाषाओं के पक्ष में मज़बूत समर्थन जुटाने के बावजूद ग्रियर्सन अपने साथी अधिकारियों को अथवा भारतीय बुद्धिजीवियों को बिहारी भाषाओं को अपनाने के पक्ष में झुका नहीं पाए। मगर उनके लेखन और एकत्रित सामग्री से स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक अधिकारियों और बिहारी बुद्धिजीवियों द्वारा मानक 'हिंदी' के पक्ष में स्वीकृति के बावजूद पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान बिहारी साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ जनमानस में लोकप्रिय थीं।[100]

आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में 'हिंदी' के विकास की यह कहानी एक महत्त्वपूर्ण आयाम है जो बिहार क्षेत्र की विशिष्टता का बयान करती है लेकिन यह पश्चिमोत्तर प्रांत पर लागू नहीं होती। इस लेख में इस आयाम पर ध्यान आकृष्ट करने का उद्देश्य 'हिंदी' के इतिहास के एक ऐसे चेहरे को दिखाना था जिसकी आवाज़ को पहले हाशिये पर डाला गया और फिर अनदेखा किया अथवा दबाया गया, ताकि उसे आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के अधिकारिक ब्योरे से बाहर कर दिया जाए। ऐसा करके 'हिंदी' भाषा के इतिहास की चुनौतियों को सदैव संघर्ष करने वाले विजेता के रूप में पेश करने का प्रयास किया गया। एक ऐसा आख्यान तैयार किया गया जिसके भीतर केवल 'हिंदी' आंदोलन को सम्मिलित किया गया और 'हिंदी' क्षेत्र के उन प्रयासों से संवाद करने का प्रयास नहीं किया जो 'हिंदी' के इतर वैकल्पिक भाषाओं की दावेदारियाँ पेश कर रहे थे।

(सर्वप्रथम, मैं क्रिस्टोफ़र बेली के सुझावों का आभारी हूँ. मैं रोज़लिन ओ हैनलोन, फ्रंचेस्का ओर्सीनी एवं सुभद्रा सन्याल की टिप्पणियों के प्रति भी विशेष आभार व्यक्त करता हूँ. इस लेख के लिए उपयोगी सुझाव देने के लिए मैं सुमित सरकार एवं तनिका सरकार का भी शुक्रगुज़ार हूँ. शाहिद अमीन का मार्गदर्शन मेरे लिए सतत प्रेरणा का स्रोत बना रहा है.)

[100] सरवन-श्राइवर, कैथरीन (1999) : 87-89.

संदर्भ

अख़्तर उरनावे (1989), *बिहार में उर्दू ज़बान ओ अदब का इरतिका, 1204-1858,* तरक्की उर्दू ब्यूरो, नयी दिल्ली.

आनंद ए. येंग (1998), *बाज़ार इन इण्डिया : मार्केट, सोसायटीज़ ऐंड कोलोनियल स्टेट इन बिहार,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया, लंदन.

आर.आर. दिवाकर (1959), *बिहार थ्रू द एजिज़,* ओरिएंट लौंगमैन, कलकत्ता.

आलोक राय (2000), *हिंदी नैशनलिज़्म,* ओरिएंट लौंगमैन, नयी दिल्ली.

उदय नारायण तिवारी (1960), द *ओरिजन ऐंड डिवेलपमेंट ऑफ़ भोजपुरी,* द एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता.

एफ. डब्ल्यू. थॉमस और आर. एल. टर्नर (1943), *जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, 1851-1941,* हम्फ्री मिलफोर्ड एमन हाउस, ई.सी., लंदन.

एस. डब्ल्यू. फैलन (1879), *अ न्यू हिंदुस्तानी-इंग्लिश डिक्शनरी,* पुनर्मुद्रित संस्करण, उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी, लखनऊ.

कुमार गंगादीन सिंह (1942). *जयंती-स्मारक-ग्रंथ,* पटना.

के. अय्यपा पणिक्कर (1997), *मिडीवल इण्डियन लिटरेचर : एन एन्थोलॅजी,* खण्ड 1, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली.

कैथरीन सरवन-श्राइबर (1999). 'द प्रिंटिंग ऑफ़ भोजपुरी फोकलोर', *साऊथ इण्डियन फोकलोरिस्ट,* 3 : 1.

जनरल डिपार्टमेंट, एजुकेशन, लेटर न. 190, राज्य अभिलेखागार, पटना, 1875.

जॉर्ज कारडोना तथा धनेश जैन (2007) 'जनरल इंट्रोडक्शन', *द इण्डो-युरोपियन लैंग्वेजिज़,* टेलर ऐंड फ्रांसिस, लंदन.

जी.ए. ग्रियर्सन के प्राइवेट पेपर्स, MSS EUR/E223/32.

जी.ए. ग्रियर्सन, *सम भोजपुरी फ़ोक-सोंग्स.*

--------- (1878),'द सॉन्ग ऑफ़ मानिक चंद्रा', *जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल.*

---------(1880), *हिंदी ऐंड बिहार डायलेक्ट्स.*

---------(1880), *अ प्ली फॉर द पीपुल्स टंग.*

---------(1881), 'हिंदी ऐंड द बिहार डायलेक्ट्स', *कलकत्ता रिव्यू.*

---------(1882), 'प्रीफ़ेस टू द फ़र्स्ट एडिशन',

---------(सं.) (1884 अ), 'द सोन्ग ऑफ़ बिजयमल', *जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल,*

---------(1885 ए), 'द सोन्ग ऑफ़ आल्हाज़ मैरिज : अ भोजपुरी एपिक', *इण्डियन एंटीक्वेरी,* XIV (अगस्त).

---------(सं.) (1885 स), 'टू वर्शन्स ऑफ़ द सोन्ग ऑफ़ गोपीचंद', *जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल,*

---------(1886), 'सम भोजपुरी फ़ोक-सोन्ग', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैण्ड,* 18 (2).

---------(1899), 'प्रीफ़ेस टू द फर्स्ट एडिशन', *अ हैंडबुक टू द कैथी कैरेक्टर,* दूसरा संशोधित संस्करण, स्पिंक ऐंड को., कोलकाता.

---------(1900). *आल्हा,* खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर.

---------(1920), 'द पॉपुलर लिटरेचर ऑफ़ नॉर्थ इण्डिया', *बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरियंटल स्टडीज़.*

-------- (2005), *सैवन ग्रामर्स ऑफ द डायलेक्टस ऐंड सब डायलेक्ट्स ऑफ द बिहारी लैंग्वेज* संख्या 1, पुर्नप्रकाशन, कल्पाज़ प्रकाशन, नयी दिल्ली. यह पुस्तक तीन खण्डों में प्रकाशित की गयी है. [भाग 1 (इंट्रोडक्टरी) प्रथम प्रकाशन 1883 में].

डॉ. गोपाल (1991), 'राम रहीम पुनर्मूल्यांकन', (सं.), रामप्रसाद पोद्दार. *परिषद पत्रिका : जन्माष्टमी विशेषांक*, पटना.

द बंगाल प्रोविंशल कमेटी.

द्विज पत्रिका (1891), संख्या 8.

धीरेंद्रनाथ सिंह (1986), *आधुनिक हिंदी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना.

नारायण दास (सं.) (2002), *बदमाश दर्पण* (रचयिता तेग़ अली), भारत जीवन प्रेस, वाराणसी.

नारायण सिंह तथा जी.ए. ग्रियर्सन (सं.) (1885ब), 'द बैटल ऑफ़ करनपी घाट', *जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बेंगाल,*.

पटना के कमिश्नर को जी.ए. ग्रियर्सन का पत्र, पृष्ठ संख्या नहीं है.

पटना के कमिश्नर को जी.ए. ग्रियर्सन का पत्र, 9 मार्च 1885, एजुकेशन रिपोर्ट, बस्ता न. 102, पटना, 1885.

पापिया घोष (2008), *कम्युनिटी ऐंड नेशन : ऐस्सेज़ ऑन आइडेंटिटी ऐंड पॉलिटिक्स इन ईस्टर्न इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2009), *प्रिंट ऐंड प्लेज़र : पॉपुलर लिटरेचर ऐंड एनटरटेनिंग फ़िक्शन इन कॉलोनियल नार्थ इण्डिया,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

-----------(2002), *द हिंदी पब्लिक स्फेयर, 1920-1940 : लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर इन द ऐज ऑफ़ नैशनलिज़म,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

बर्नार्ड कोह्न (1997), द *कमांड ऑफ़ लैंग्वेज ऐंड द लैंग्वेज ऑफ़ कमांड इन कोलोनियलिज़म ऐंड इट्स फ़ॉर्म्स ऑफ़ नॉलेज : द ब्रिटिश इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

बाबू बिरेश्वर चक्रवर्ती (1886). *साहित्य संग्रह,* बिहार बंधु प्रेस, बाँकीपुर.

ब्रोजोंद्रेनाथ बंद्योपाध्याय (1974), *भूदेव्ज़ लाइफ़ : भूदेव मुखोपाध्याय,* चौथा संस्करण, बंगीय साहित्य परिषद, कोलकात्ता.

राधिका प्रसन्न मुखर्जी (1880). *अ फ़्यू नोट्स ऑन हिंदी,* जे.जी. चटर्जीअ ऐंड कम्पनी प्रेस, कलकत्ता.

रामनरेश त्रिपाठी (सं) (1986), *ग्राम्य-गीत,* हिंदी-मंदिर, प्रयाग.

रिपोर्ट ऑफ़ द स्कूल इंस्पेक्टर ऑफ़ बिहार सर्कल टू द कमिश्नर ऑफ़ पटना ऐंड भागलपुर, पटना, 1873.

रिपोर्ट बॉय द बंगाल प्रोविंशियल कमेटी.

वसुधा डालमिया (1997), द *नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ हिंदू ट्रेडिशंस : भारतेंदु हरिश्चंद्र ऐंड नाइंटीथ-सेंचुरी बनारस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

शारदा देवी विद्यालंकार (1969), द *डिवेलपमेंट ऑफ़ हिंदी प्रोज़ लिटरेचर इन द अर्ली नाइंटीथ सेंचुरी (1800-1856 ए.डी.),* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

शाहिद अमीन (सं.) (2005), *अ कंसाइज़ इनसाइक्लोपिडिया ऑफ़ नार्थ इण्डियन पैजेंट्स लाइफ़, बींग अ कम्पाइलेशन फ़ॉर्म द राइटिंग्स ऑफ़ विलियम क्रुक, जे.आर. रीड और जी.ए. ग्रियर्सन,* मनोहर, नयी दिल्ली.

साहब प्रसाद सिन्हा (1890), *भाषासार,* खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर.

साधना नैथानी (2001 ए), 'प्रीफ़ेस्ड स्पेस : टेल्स ऑफ़ द कोलोनियल ब्रिटिश कलेक्टर्स ऑफ़ इण्डिया', *फ़ोकलोर,* लुईसा डेल और जेर्लड पोर्टर (सं.), *इमेजिंड स्टेट्स : नैशनलिज़म, यूटोपिया ऐंड लोंगिंग इन ओरल कल्चर,* लोगन, ओतह.

---------(2001 बी), 'ब्रिटिश कोलोनियलिज़म इन द ओरल फ़ोक नैरेटिव्ज़ ऑफ़ नाईटींथ-सेंचुरी इण्डिया', *फ़ोकलोर,* 112 (2).

सी.आर. किंग (1994), *वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स : द हिंदी मूवमेंट इन नाइंटीथ सेंचुरी नार्थ इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

सुरेंद्र गोपाल (1982), *पटना इन नाइनटींथ सेंचुरी : अ सोशियो-कल्चरल प्रोफ़ाइल,* नया प्रोकाश, कलकत्ता.

हितेंद्र पटेल (2011), *कम्युनलिज़म ऐंड द इंटलिजेंशिया इन बिहार, 1870-1930 : शेपिंग कास्ट, कम्युनिटी ऐंड नेशनहुड,* ओरिएंट ब्लैकस्वॉन, नयी दिल्ली.

हेतुकर झा, धीरेंद्रनाथ सिंह और सुरेंद्र गोपाल (1996)(सं.), *बाबू रामदीन सिंह रचयिता बिहार दर्पण,* दरभंगा.